जप जी

गुरु नानक देव जी का सन्देश

पंजाबी में मूल ग्रंथ से अनुवाद सहित भूमिका,
व्याख्या, टिप्पणी और गुरु नानक साहिब
के जीवन पर एक नज़र

कृपाल सिंह

'जप जी :
गुरु नानक देव जी का सन्देश'

मूल पुस्तक :
'The Jap Ji :
The Message Of Guru Nanak'
प्रथम संस्करण ('रूहानी सत्संग' द्वारा): 1959

हिन्दी अनुवाद :

वर्तमान संस्करण: 2021

मुद्रक :

समर्पण

उस सर्वशक्तिमान प्रभु को,
जो सब पूर्ण पुरुषों के द्वारा कार्य करता है,
जो आज तक आए,
और
हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज को,
जिनके चरण-कमलों में
लेखक ने
'शब्द-नाम' के मधुर
अमृत-रस का पान किया।

विनम्र निवेदन

'जप जी'—गुरु नानक साहिब के सन्देश का परम संत कृपाल सिंह जी महाराज ने अंग्रेज़ी में अनुवाद और प्रस्तुतिकरण किया। इसका अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवाद परमार्थाभिलाषियों के लाभ के लिए पेश किया जा रहा है।

आत्म—विद्या के माहिर और दूसरे महापुरुषों के प्रमाण जो इस पुस्तक में आये हैं, उन्हें उनकी ही भाषा में देने की कोशिश की गई है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' में 'जप जी' के सिवाय बाक़ी सारी वाणी 'रागों' में दर्ज है। इसलिए हर एक प्रमाण के आगे राग और महापुरुषों के नाम का संकेत दिया गया है।

संतों की वाणी लिखने का ढंग निराला और भाव से भरपूर होता है। उनकी वाणी में कई मात्राएँ ऐसी हैं जो लिखने में तो आती हैं, मगर पढ़ने में नहीं आती। उदाहरण के तौर पर : 'सतिनामु' 'परखु' 'मूरति' 'परसादि' आदि ये पढ़ने में ऐसे आयेंगे : सतनाम, पुरख, मूरत, परसाद। पाठक लफ़्ज़ों को पढ़ने में यह बात कृपया ख़ास कर के ध्यान में रखें।

'जप जी' का हुज़ूर महाराज जी ने जो अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है, उसका सही हिन्दी में अनुवाद करना हमारे बस के बाहर है। परन्तु हुज़ूर महाराज की दया से, जितनी समझ उन्होंने हमें दी, उसके अनुसार अनुवाद करने की कोशिश की गई है। अगर इसमें कोई त्रुटि रह गई हो, तो वह हमारी ही है।

विषय-सूची

भूमिका 7

प्रस्तावना 9

1. धर्म– वस्तुगत तथा व्यक्तिगत 13

2. ‘हुक़्म’– उसे बूझें कैसे? 21

3. ‘नाम’ के वस्तुगत तथा व्यक्तिगत पहलू 23

4. भिन्न–भिन्न धर्मों से प्रमाण 25

5. ‘शब्द’ का भेद जानना 37

- दुख और सुख की व्याख्या 39

- आत्मा के अंतर में नाम के साथ जुड़ने (‘सुरत–शब्द योग’) के अनेक फल 41

6. सुमिरन का अर्थ तथा अभ्यास 49

7. तीन विशाल खंड और उनके विशेषण 57

- इंसान रचना के महान तीन खंडों का एक संक्षिप्त नमूना है 59

- व्यष्टि की समष्टि के लोकों से एकमेक होने की सम्भावना 60

- उच्चतर आत्मिक मंडलों पर पहुँचने से पहले आत्मिक धारा की एकाग्रता आवश्यक है 61

- तीन संयमों का प्रयोग और उनकी विधि 64

8. गुरु–परमेश्वर : God-man 71

- गुरु–परमेश्वर (सत्स्वरूप हस्ती) के बिना, आत्मा का भेद कभी भी प्रकट नहीं हो सकता 71
- आत्मा को मालिक की ओर ले जाने के लिए तीन अनिवार्यिक साधन 72
- सत्स्वरूप हस्ती के गुण 72
- धर्म–ग्रंथ आध्यात्मिक जाग्रति लाने के योग्य नहीं 74
- प्रभुस्वरूप हस्ती की आवश्यकता 76
- गुरु कौन होता है? 77
- केवल गुरु–परमेश्वर ही सच्चा मित्र होता है 83

9. सत्स्वरूप हस्ती को कैसे पहचानें? 87

10. धर्म में त्रिपुटी 101

11. जीवन का लक्ष्य 105

12. 'जप जी' का हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या 109

गुरु नानक साहिब और उनकी तालीम पर एक नज़र 171

संक्षिप्त जीवन–चरित्र– संत कृपाल सिंह जी महाराज 195

भूमिका

'जप जी' गुरु नानक साहिब का सन्देश, संसार को इसलिए दिया जा रहा है, ताकि भूखी आत्माओं को ख़ुराक़ मिल सके और उच्च जीवन के वास्तविक ज्ञान की प्यास मिट सकें।

'जप जी' पंजाबी में अति सुन्दरता से लिखा गया है और इसका पूर्ण रूप से अनुवाद करना असम्भव है। फिर भी इन पृष्ठों में लोगों के सामने मूल रूप में अनुवाद पेश करने की कोशिश की गई है। जहाँ कहीं पाठक को वास्तविक अर्थ समझने में कठिनाई आए, उसे अपनी समझ–बूझ का सहारा लेना चाहिए।

'जप जी' मात्र सिद्धांत (theory) से अधिक आध्यात्मिकता के अमली पहलू के मसले को पेश करता है। यह कार्य सिर्फ़ साहित्य–लेखन का ही नहीं है। इससे पहले, अंग्रेज़ी में किये गये अनुवादों में इस चीज़ को भुला दिया गया और वास्तविक सच्चाई को पेश नहीं कर पाये। इस प्रस्तुति में यह कोशिश की गयी है कि ज़्यादा तवज्जोह 'जप जी' के सन्देश को पेश करने पर दी जाये, बजाए लफ़्ज़ी मतलब देने के। इस पुस्तक को पढ़ने से सभी लोगों को मदद मिलेगी, चाहे वे किसी भी धर्म में विश्वास रखते हों।

धार्मिक विचार सब प्राणियों के हृदय में घर किये हुए हैं। ऐसा कुदरती है और ये सदा की शान्ति और महाआनन्द की खोज के रूप में सामने आते हैं। जब यह जागृति इंसान के अन्तर में आती है, वह धार्मिकता की ओर, एक या किसी दूसरे धर्मों के बताए हुए साधनों पर चलता है। वह धर्मग्रंथों को लगन और तीव्र इच्छा से पढ़ना शुरू करता है। ये प्रभु–अनुभव के लिए प्राथमिक और ज़रूरी क़दम हैं। मगर वह जो इस स्थिति से आगे नहीं जा पाता, वह सोचते हुए कि यह ही सब कुछ है, और

यह ही धर्म का अन्त है, कभी भी उच्चतर चेतनता में प्रवेश नहीं कर सकता। यह शुरूआती साधन है। अपने मन की आध्यात्मिक अशान्ति को शान्त करने के लिए, उसे एक क़दम और आगे बढ़ाना होगा।

आख़िर में 'शब्द–वाणी' में लीन होने के लिए इंसान को अन्तरी पहलू अपनाना पड़ता है। यह अनन्त संगीत सारी रचना का मूल है और इसमें रमा हुआ है। ईशु मसीह ने इसे 'शब्द', मुसलमान फ़कीरों ने 'कलमा', ज़रतुश्तु ने 'स्रोशा', हिन्दू धर्म–ग्रंथों ने 'श्रुति', 'उद्गीत', 'नाद' या 'आकाश–वाणी' कह कर वर्णित किया है। 'शब्द' की तक़रीबन सभी महापुरुषों ने कमाई की और इसकी ही शिक्षा दी। प्रभु में लीन होने का यह एक शीघ्रतर, आसान और कुदरती रास्ता है। जिनको आध्यात्मिक जीवन के अन्तरी लोकों में एक क़दम बढ़ाने की इच्छा है, उनके लिए इस पुस्तक का पढ़ना एक ख़ुराक़ का काम करेगा।

यह तालीम जातिवाद के भेद–भाव के बिना सम्पूर्ण मानव जाति के लिए पेश की गई है। पूर्ण पुरुष हर समय सारी मानव जाति के लिए होते हैं। हम आशा करते हैं कि इस अनुवाद की कोशिश हमें अपने आप को और परमात्मा को जानने के लिए सही नज़री देगी।

पूर्ववर्ती महान पूर्ण पुरुषों की तालीमों को और अन्य लेखकों का, जैसे– टेनिसन, हक्सले आदि, जिनका वर्णन भूमिका में दिया गया है, प्रेम सहित आभार प्रकट किया जाता है।

श्री भद्र सैन और दूसरे भाइयों को भी मेरा धन्यवाद है, जिन्होंने इस पुस्तक (अंग्रेज़ी अनुवाद) के मसौदे को पढ़ने में दिलचस्पी ली और काफ़ी समय तक मेहनत की।

– कृपाल सिंह

प्रस्तावना

'जप जी' क्या है? यह गुरु नानक साहिब की मनोहर दिव्य वाणी है, जो कि 'गुरु ग्रंथ साहिब' की प्रस्तावना के रूप में पेश है। यह सिक्खों का महान लिखित ख़ज़ाना है, जो कि 1400 से ज्यादा पन्नों में दर्ज है। 'जप जी' उनकी तालीम के मूल असूलों का बयान करता है और एक मत से, उस एकंकार (सम्पूर्ण सृष्टिकर्ता) को पाने का साधन बताता है।

'जप जी' दो लफ्ज़ों से बना है—'जप' और 'जी'। 'जप', किसी ख़ास आदर्श पर ध्यान को उस हद तक लाता है कि ध्यान करने वाला अपने आप को भूल जाता है और उसमें लीन हो जाता है। इस जाप से साधक अपने आपको भूल कर, उसका तद्‌रूप बन जाता है। यहाँ उपयुक्त यह लफ़्ज़, ध्यान में महव होने की प्रेरणा देता है या आंतरिक नाम का जप या सुमिरन करके, वह इंसान की हंगता (अहंकार) के रंग को इस हद तक मिटा देता है कि चेतनता, जो आगे ही इसके अन्दर मौजूद है, को यह प्रकट करता है— आध्यात्मिकता, भौतिक अस्तित्व का स्थान धारण कर लेती है। 'जी' का अर्थ है, एक नया जीवन, जो अन्तरीय शब्द की कमाई से मिलता है और हमें ज़िंदगी के शाश्वत सोमे के निकट ले जाता है। इस प्रकार यह अपने आप में हमारी ज़िंदगी के राज़ का हल संजोये रखता है। यह, सही रूप से, अन्तर परिपूर्ण 'शब्द' के साथ जोड़ कर सच्ची ज़िंदगी प्रदान करता है।

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ॥
नानक अवरु न जीवै कोइ॥

— आदि ग्रंथ (माझ वार म.1, पृ.142)

इसलिये, यदि आप श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता चाहते हैं, तो अपने आप को 'दिव्य शब्द', जो पहले से ही आपके अन्तर मौजूद है, से जोड़ना होंगा। अन्तर में परमात्मा का अनुभव किये बग़ैर, यह शरीर उस धौंकनी के समान है, जिसका काम बिना कारण हवा अन्दर लेना और बाहर निकालना है। सत्गुरु फ़रमाते हैं कि परमात्मा से जुड़े रहना ही जीवन का मुख्य आदर्श है। 'जप जी' ज़िंदगी के मूल असूलों से शुरू होता है और उनकी तालीम के इस सार के साथ समाप्त होता है : परमात्मा की नज़र में सब इंसान एक हैं, सब को एक जैसे हकूक दिये गये है; संयोग और वियोग अपने-अपने कर्मों से है; मुक्ति केवल "दिव्य नाम" या "शाश्वत शब्द" के साथ लगने से हो सकती है। किसी संत-सत्गुरु की समर्था इसी में है कि वह दूसरों की आत्मा को, जो संसार में उलझी पड़ी है, ऊपर उठाये। हर एक मत के विभिन्न विचारों से सम्बन्धित तथ्यों के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि एक ही सच्चाई सम्पूर्ण रचना की पृष्ठभूमि में कार्यरत है।

गुरु नानक साहिब का प्राथमिक सिद्धांत है कि मालिक की रज़ा को हम अपनी रज़ा बनायें, ताकि हम उस के साथ एक हो सकें। पवित्र 'दिव्य नाम', जो परिपूर्ण है और जिसका आग़ाज़ उस "एक पुरुष" से हुआ है, के साथ लगने से ही उसकी रज़ा प्रकट होती है। पवित्र "नाम" अन्तरी रूहानी संगीत (नाद, कीर्तन) है, जो कि सम्पूर्ण रचना में गूंज रहा है। (पौड़ी-1,2,3)

सुमिरन, मालिक की लगातार याद है, जो उनसे मिलाप कराने में मदद करती है। यह और अन्य प्रारम्भिक क़दम, सच के मार्ग को सफलता के लिए ज़रूरी योग्यतायें, जो साधक में होनी चाहियें और परमात्मा से एकमेक होने के लिए जिन भिन्न-भिन्न रूहानी मंडलों में से आत्मा को गुज़रना पड़ता है, इन सब का विवरण 'जप जी' की 38 पौड़ियों में किया गया है।

'जप जी' गुरु नानक की तालीम का संग्रह है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' सिक्खों का सर्वश्रेष्ठ ख़ज़ाना और पवित्र ग्रंथ है, जिसमें इस प्राथमिक कथन का वर्णन विस्तार सहित किया गया हैं। हम पूर्ण पुरुषों के बताये हुए हर एक विषय को एक–एक करके लेंगे और समझाने की कोशिश करेंगे कि उन्होंने कैसे ज़िंदगी की परेशान कर देने वाली उलझनों को सुलझाया। हमें उसे सावधानी के साथ अध्ययन करने के लिए धीरज रखना है; तभी हम देख सकेंगे कि आध्यात्मिकता की किन ऊँचाइयों पर पूर्ण पुरुष हमें हर एक को पहुँचाना चाहते हैं।

1. धर्म– वस्तुगत तथा व्यक्तिगत

आजकल धर्म को– जिस प्रकार इसे आम तौर पर समझा जाता है– ग़लत तरीक़े से उपयुक्त किया गया है। ख़ास प्रकार के लफ़्ज़ों की प्रार्थनायें, ज़रूरी रस्में, समय लगने वाले रीति–रिवाज़, बाहरी चिह्न–चक्रों से लगाव, अंतरी रूहानी मार्ग को त्याग कर और एक मज़हब को दूसरे मज़हब से श्रेष्ठ मानना, यह और दूसरे धर्म के नाम पर अन्धाधुन्ध किए जाने वाले कर्मों ने इस धर्म नाम को बदनाम कर दिया है। एक धर्म ने दूसरे धर्म से लड़ाई छेड़ रखी है, मुक्ति मार्ग के विचारों में मतभेद होने पर भाई–भाई से लड़ रहा है। ख़ून–ख़राबा, झूठ, नफ़रत, बेसबरी और कट्टरता आदि ही आजकल धर्म के नाम पर सिखाये जाते हैं, जबकि धर्म की अच्छाई, परमात्मा का पितृभाव और मनुष्यों में भ्रातृभाव नाममात्र रह गये हैं।

वास्तविक कारणों से हटकर धर्म को सिर्फ़ मतों और सिद्धांतों का धन्धा बना दिया है। करनी केवल लफ़्ज़ों में ही रह गई है। धर्म का अपने आप का ज्ञान और प्रभु–प्राप्ति के विषयों से कोई संबंध नहीं रह गया है। बाहरी क्रियाओं से परमात्मा को पाना और बाहरी लफ़्ज़ों का बार–बार उच्चारण करना, तीर्थस्थानों पर भटकना, नास्तिक पुरुषों की संगत आदि से पता चलता है कि धर्म कहाँ तक गिर गया है। पुरातन महापुरुषों को जब इन्हीं हालातों का सामना करना पड़ा, तो उन्होंने इस बनावटी धर्म और पुजारियों के कर्मकांड के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई।

क्या यह दुख की बात नहीं है? सचमुच, यह बहुत ही शर्म की बात है। बदक़िस्मती से, यह सब इंसान की अज्ञानता के कारण है। सच्चा

धर्म, बनावट या झूठ नहीं मानता। धर्म का उद्देश्य पुजारियों का अन्धविश्वास नहीं है। इसका उद्देश्य बाँधना नहीं, बल्कि इंसान को बंधनों से मुक्त करना है।

सत्गुरु एक ऐसा धर्म सिखाते हैं, जो इंसानों की एकता सिखाता है। कुदरत हिन्दू, मुसलमान और ईसाई में कोई भेदभाव नहीं रखती। सब इस धरती पर एक ही मानवता से सम्बन्धित हैं। गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं कि भ्रातृभाव ही सबसे महान धर्म हैं, इस असूल को मानो।

आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु॥

— आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 28, पृ.6)

हमें सब इंसानों को, चाहे वे किसी रंग या जाति के हों, बराबर मानना चाहिये। जिस तरह एक जमात में सब जातियों के बच्चे, ग़रीब या अमीर इकट्ठे बैठते और खेलते हैं, एक दूसरे से प्यार करते हैं और एक ही सबक़, एक ही अध्यापक से पढ़ते हैं। इसी प्रकार सारा संसार एक ही जमात होना चाहिए; जाति या रंग का भेदभाव नहीं होना चाहिए। परमात्मा का पितृभाव और इंसानों का भ्रातृभाव ही धर्म का सच्चा सार हैं। सारी मानवता एक है, चाहे कोई भी लेबल लगाया हो— सिक्ख, हिन्दू, मुसलमान, यहूदी, ईसाई, बौद्ध या जड़तावादी।

जीअ जंत सभि सरणि तुम्हारी सरब चिंत तुधु पासे॥
जो तुधु भावै सोई चंगा इक नानक की अरदासे॥

— आदि ग्रंथ (बिलावल म.1, पृ.795)

पूर्ण पुरुष कुदरत से प्यार करते हैं और उसके असूलों का आदर करते हैं। वे किसी बनावट या झूठ को नहीं मानते। कुदरत अति सुंदर है, सिवाय जब कि इंसान द्वारा उसका दुरुपयोग न किया जाए। परमात्मा इसलिए कुदरत को बाहरी इंसान की देख—रेख तथा यथाउचित संरक्षण के लिए छोड़ देता है। अधिकांश पूर्व व पश्चिम के

महापुरुषों– ईसा मसीह, बुद्ध, राम, कृष्ण तथा अन्यों– ने प्राकृतिक असूलों से बने हुए शारीरिक आकार, जो उन्हें मिले, उनमें कोई दख़ल नहीं दिया। वास्तव में, इससे ऊँचा कोई धर्म नहीं है। यह धर्म का एक रूप है, जो 'वस्तुगत' (objective) है। इसका एक रूप और भी है, जिसे 'व्यक्तिगत' (subjective) कहा जा सकता है, जिसका कुछ भी ज्ञान हमें नहीं है। इसके बारे में महापुरुष हमें क़ुदरती तौर से अंतरीय जीवन में उन्नति करना सिखाते हैं, जो नेक–पाक जीवन और अपनी आत्मा में परमात्मा की मौजूदगी का अनुभव करने पर आधारित है। यही धर्म का सच्चा रूप है। यह कोई मौखिक धन्धा नहीं है, परन्तु एक उच्च क्रियात्मक और जीवन्त सारतत्व है।

पहला सबक़ जो हमें सीखना है, वह है, मनुष्य के अंतर परमात्मा की मौजूदगी तथा उसका अनुभव– वस्तुतः उसको हर जगह प्रत्यक्ष पाना। यह एक सदा–सचेतन तथा क्रियात्मक सिद्धांत है, जो सारी सृष्टि में रमा हुआ है और सृष्टि को व्यक्त करने का कारण है। प्रकृति के अटल क़ानून, अनगिनत रूप और दृष्यप्रपंच संयोगवश ही नहीं बने। यह सारा संसार एक महान विधाता (परमात्मा) से रमा हुआ है, और उसके ही हुक्म से इसका नियन्त्रण तथा पालन–पोषण हो रहा है।

इंसान जो भी बीज बोता है, उसका फल ज़रूर भोगता है– यहाँ या इसके पश्चात। सभी कर्मों के दायरे में हैं– कोई भी इससे बचा नहीं। कर्मों के अटल क़ानून के बंधन से बचने का केवल एक ही तरीक़ा है– पवित्र 'नाम' दिव्य 'शब्द' से जुड़ना, जो कि गुरुमुखों या पूर्ण पुरुषों के चरणों में बैठकर ही प्राप्त होता है। जब कोई इसे समझ जाये, तभी वह इससे अगला क़दम उठाने के लायक़ बन पाता है।

सब इंसान बराबर हैं और अपने अन्तर में शाश्वत दिव्य ज्योति की चिंगारी लिये हुए हैं। यहूदियों के सिनागॉग या मुसलमानों की मस्जिदों के रीति–रिवाज़, हिन्दुओं के पूजा करने के तरीक़े या मुसलमानों की नमाज़, ईसाइयों की उपासनाओं के तरीक़े महान प्रभु से प्रेम करने के भिन्न–भिन्न तरीक़े हैं।

हम सब दिन और रात, स्त्री या पुरुष– एक जो सदैव क्रियाशील रहता है और दूसरा, जो निष्क्रिय है– के रूप में सृष्टि माता की सेवा कर रहे हैं। सभी एक ही धरती पर, एक ही आकाश के नीचे, एक ही हवा में साँस लेते, एक जैसा पानी पीते, जी रहे हैं। कम लफ़्जों में, हम सब एक ही से तत्वों के बने हुए हैं– यथा धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश।

और फिर, हम सब एक जैसे हकूक रखते हैं। सब को एक जैसी आँखें देखने को, कान सुनने को, एक जैसे अंग हिलने–डुलने को और एक जैसी ज़बान बोलने को मिली हुई है। कोई भी कुदरत की दातों से वंचित नहीं है, क्योंकि कुदरत सब को एक जैसी सहूलियतें प्रदान करती है और सब की एक जैसे सम्भाल करती है।

सब मनुष्य– यहाँ, वहाँ और हर जगह– एक ही पिता (परमात्मा) के बच्चे हैं और आध्यत्मिकता के एक अटूट सूत्र में जुड़े हुए है। अगर आप इसके किसी एक मनके को भी जुदा करना चाहें, तो पूरी माला के पर इसका असर होगा। इसलिये संतों का आदेश हैं कि किसी का दिल को दुखाओ। बाबा फ़रीद जी 'गुरु ग्रंथ साहिब' में फ़रमाते हैं :

जे तउ पिरीआ दी सिक हिआउ न ठाहे कही दा॥

– आदि ग्रंथ (सलोक सेख फ़रीद, पृ.1384)

गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि हम सब सम्पूर्ण रचना का एक अंश बनें और अपने ह्रदय से सारे संसार को असीम करुणा से देखें और सब के लिये शान्ति की कामना करें। उन्होंने इन बातों को इन सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है :

नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे सरबद दा भला।

तो फिर विभिन्न धर्मों की मान्यताओं और बाहरी चिह्नों में भिन्नता क्यों हैं? पूर्ण पुरुष बताते हैं कि यह इसलिए हैं, क्योंकि भिन्न–भिन्न रीति–रिवाज़, भिन्न–भिन्न देशों में फैले हुए हैं। उन्होंने फ़रमाया :

देहरा मसीत सोई पूजा औ निवाज ओई

— दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ.19)

हिन्दुओं की पूजा का तरीक़ा और मुसलमानों की नमाज़ उसके लिए एक जैसी है।

हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम साफी
मानस की जाति सबै एकै पहचानबो।

— दसम ग्रंथ (अकाल उसतति, पृ.19)

सारी मानवता एक ही ज़िन्दगी के स्त्रोत से निकली है। इंसानों के भिन्न—भिन्न समाजों— तुर्क, हिन्दू आदि— के रस्मों—रिवाज़ उनके भिन्न—भिन्न मुल्क़ों के हालात और रहन—सहन के तरीक़ों के कारण है।

अब हम एक मिसाल लेते हैं। पश्चिमी देशों में नंगे सिर जाना अदब की निशानी है, जब कि पूर्व में इसे बेअदबी माना जाता है। यह प्रत्यक्ष रूप में पश्चिम और पूर्व की बाहरी पूजा के तरीक़ों की विभिन्नता को दर्शाता है। ईसाई गिरजे की सेवायें नंगे सिर की जाती हैं, लेकिन पूर्व में भक्तजन सदैव सिर ढक कर पूजा करते हैं।

मौसम का भी धार्मिक कर्मकांड पर बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, अरब में, जो मुसलमानों का गढ़ है, अरब के लोग पानी की कमी के कारण नमाज़ पढ़ने से पहले 'वज़ू' करते हैं (अपने मुँह, हाथ और पैर धोते हैं), लेकिन जहाँ पानी नहीं मिलता है, वहाँ उनको तयमुम्म करना पड़ता है, यानी रेत से अपने शरीर के अंगों को साफ़ करना। भारत में, हिन्दू पानी का अधिकाधिक प्रयोग करते हैं और इसलिए पूजा—पाठ करने से पहले स्नान करना ज़रूरी माना जाता है। यही बात लिबास (पहनावा) और दूसरी ऐसी चीज़ों के लिए भी लागू होती है। क्षेत्रीय क्रियाकलाप ही वहाँ पर उपजे धर्मों का अंग बन गये। आज जो धर्मों में यह भेद नज़र आता है, इन्हीं रीति—रिवाज़ों के कारण है। इसके अलावा संसार के अलग—अलग भागों में लोगों के स्वभाव में फ़र्क है।

जबकि हर एक का अपनी–अपनी प्रवृत्ति है और अपना–अपना सोचने का ढंग है, सबको एक ही बात मानने के लिये ज़ोर दिया जाना उचित न होगा। इसी मत के कारण आज तौर–तरीक़े और विचारधारायें पाई जाती हैं और ये दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही हैं। वैसे तो, सभी का उद्देश्य इंसान का ज्ञान–वर्धन कराना है। इसलिए, जब तक कि वे धर्म के व्यक्तिगत पहलू तक नहीं पहुँचते, जो कि सारी मानवता के लिए एक और एक समान है, इन्सानों को वही चुन लेना चाहिए जो उनके स्वयं के लिए उचित हो।

व्यक्तिगत या सच्चा धर्म, एक शाश्वत सिद्धांत को इंगित करता है, न कि बाहरी रूपों और रीति–रिवाज़ों को, और इसलिए यह सर्वव्यापी है। यह बजाऐ बाहरी सूत्रों से मन को लगाने के, अन्तरीय आध्यत्मिक विकास पर ज़ोर देता है। यह वह पहलू है, जहाँ सभी धर्म मिलते हैं। हमारी इस धरती पर आए सब रूहानी पूर्ण पुरुषों की तालीम में इसी पर ज़ोर दिया गया है। महापुरुषों के उदाहरणों और प्रमाणों से इस नज़रिये की पुष्टि के लिए हम इस सच्चाई को आगामी पृष्ठों में पढ़ेंगे।

धर्म के दो पहलू हैं– एक बाहरी, जो कि खोल है और दूसरा अन्तरीय है, जो कि तत्व और सार है। इंसान ने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि बाहरी धर्म का उद्देश्य मात्र एक ख़ास वर्ग के लोगों के सामाजिक सुधार के लिये है। धर्म के मार्ग में आगे बढ़ने के लिए, हर एक ने अपने–अपने नियम और क़ानून बनाये, ताकि सुख और दुख में जीवन आसानी से गुज़र सके। इसका अर्थ यह है कि केवल उस समाज के लोगों की सेवा के लिए ही अपना सब कुछ त्याग करना, जो कि संसार में इंसान के जीने के लिए ज़रूरी है। बाहरी रस्मों के मानने के कारण ही आज कई समाजें और क़ौमें नज़र आती हैं। इसे 'सामाजिक धर्म' कह कर वर्णित किया जा सकता है।

अंतरीय धर्म समाजों और क़ौमें से बिलकुल आज़ाद है, चाहे बाहरी धर्म इसी ठोस बुनियाद पर खड़े है। गिरावट आना, समय का नियम है। जिन्होंने सामाजिक धर्मों को शुरू किया, अन्तरीय पहलू को जानते हुए

भी, बाहरी रीति–रिवाज़ों में उस सच्चाइयों के चिन्ह छोड़ गये, जिन पर वे आधारित थे। जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, ये रीति–रिवाज़ पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं और उन महान तथा श्रेष्ठ सच्चाइयों की अज्ञानता बढ़ती जाती है, जिनके आधार पर वे वास्तव में बनाये गये थे। इसके कारण, बाहरी रीति–रिवाज़ों के लगाव ने उन असली उद्देश्यों, जिनके लिये यह बने थे, का स्थान ले लिया। इसी कारण बाहरी पहलू रह जाता है और सारतत्व ख़त्म हो जाता है। इसका अपरिहार्य परिणाम है, धार्मिक हठ, कट्टरता, जातिवाद तथा साम्प्रदायिकता, जिसका परिचय सभी धर्मों के अनुयायी अपने जीवन के रहन–सहन में देते हैं। यही, जो भ्रष्टाचार धर्म के अंतःकरण में घर कर गया है, उसका कारण समझाता है, जिससे यह आपस में एकता के सूत्र में न बंध कर, एक झगड़े की जड़ बन गया है।

संसार के सारे महान ग्रंथों की तालीम में धर्म के अन्तरीय पहलू की झलक (किरण) मिलती है। कोई भी धर्म सत्य की चिंगारी के बग़ैर नहीं है। इस परिपेक्ष्य से सब धर्मों की इज़्ज़त करनी चाहिये। धर्म का व्यक्तिगत पहलू वह है, जो कि सभी पूर्ण पुरुषों ने सिखलाया है। यह मात्र एकरूप है और सबके लिए एक समान है। किसी समाज या जाति के लिए इसमें कोई भेद–भाव नहीं है। अपनी–अपनी क़ौमी नियमों को तोड़े या इनमें दख़ल दिए बिना, हर कोई इस सत्य को ग्रहण कर सकता है। यह सभी धर्मों का निजी अंग है और इंसानों को अपने धर्मों की गहनतर अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। अन्तरीय धर्म केवल किताबी ज्ञान नहीं है। यह हमारा अपना अनुभव ही है, जो कि सभी धर्मों में वर्णित सच्चाइयों को साबित करता है।

हम अब धर्म के अन्तरी पहलू को, जैसा कि गुरु नानक साहिब ने इसकी कल्पना की, वर्णित करने की कोशिश करेंगे।

सत्गुरु बुनियादी असूल बताते हैं। एक हस्ती है (एकंकार), जो कर्ता है और सब का करन–कारन है। उसने ही सारी सृष्टि को अपने हुक्म से बनाया। साइन्सदान भी अब इस महान संसार

की विभिन्नता में एकता को पाने लगे हैं। वे सृष्टि की रचना के पदचिन्ह इसके एकल मूल आधार तक पाने लगे है। यह निर्विरोध साबित होता है कि एक ही ताक़त सारी सृष्टि को सहारा दे रही है। जैसे कि सूर्य, मौसमों के बदलने और सारी वनस्पति की उत्पत्ति का कारण है, वैसे ही एक हस्ती (एकंकार) संसार के सम्पूर्ण दृष्यप्रपंच लिए ज़िम्मेदार है। गुरु नानक साहिब इस लिये फ़रमाते है कि "परमात्मा एक है।" 'एक' लफ़्ज़ अनाम और अशब्द को इंगित करता है। किन्तु, क्योंकि हम सीमा के भीतर मौजूद हैं, इसलिये हम उसे भी सीमा के अन्दर मान कर बयान करते हैं।

हरि बिअंतु हउ मिति करि वरनउ किआ जाना होइ कैसो रे॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.5, पृ.612)

जो भी 'एक' के भेद को जानता है, वह उसके साथ अभेद हो जाता है।

इसु एके का जाणै भेउ॥ आपे करता आपे देउ॥

— आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ.930)

2. 'हुक़्म'—उसे बूझें कैसे?

"उसकी रज़ा को अपनी रज़ा बनाना," यह ही उसको पाने का तरीक़ा है। हुक्म, अपने आप में, सब बयानों के परे है। फिर भी, इसके बारे में समझाने के लिए गुरु नानक साहिब 'जप जी' की दूसरी पौड़ी में इसका बयान करते हैं। इसको एक ऐसी चीज़ समझ सकते हैं, जो रचना को बना और बिगाड़ रही है, जिसके पृष्ठ में किसी चेतन सत्ता का आधार है। परमात्मा अपने आप में अशब्द, निराकार और अनाम है। जब वह इज़हार में आया, तो इसे 'शब्द' या 'नाम' कहा गया, जो कि सम्पूर्ण सृष्टि की रचना का कारण है। 'नाम' को एक सर्वव्यापी शक्ति भी माना जा सकता है, जो संसार के महान दृष्यप्रपंच को क्रियाशील कर रहा है। 'हुक्म' सर्वव्यापी शक्ति से अभिन्न है; परन्तु हम उसको अन्धा न समझें– क्योंकि वह बुद्धिमान, संवेदनशील और सउद्देश्य है। इस निरंतर क्रियाशील हुक्म, जो मायावी पदार्थ से ढका हुआ है, का अनुभव केवल उसके साथ अपनी इच्छा को जोड़ने से ही हो सकता है। बाक़ी सब साधन फ़जूल हैं। इंसानी पुरुषार्थ सब व्यर्थ हैं। महापुरुष कहते हैं :

सचा नामु धिआइ तू सभो वरतै सचु॥
नानक हुकमै जो बुझै से फलु पाए सचु॥

– आदि ग्रंथ (रामकली वार म.3, पृ.950)

इंसान को हुक्म का अनुभव पवित्र 'नाम–शब्द' के साथ जुड़ने से हो सकता है। महापुरुषों की वाणियों में 'नाम', 'वाणी', 'अकथ कथा', 'नाद', 'शब्द', 'गुरुमत' आदि लफ़्ज़ उस 'एक चेतन–शक्ति' के लिए बरता गया है, जो सारी रचना के पीछे काम कर रहा है।

3. 'नाम' के वस्तुगत तथा व्यक्तिगत पक्ष

इस सिद्धान्त के दो पक्ष हैं– एक वस्तुगत (objective) और दूसरा व्यक्तिगत (subjective)। वस्तुगत पक्ष उस (एक) के इज़हार के भिन्न–भिन्न विशेषणों को बताता है। इसकी अपनी उपयोगिता है, जो कि बाद में 'सुमिरन' के अध्याय में समझाया जाएगा। व्यक्तिगत पक्ष, 'हक़ीक़त का सार' है, जो सभी धर्म–ग्रंथों के केन्द्र में स्थित है। इसके बग़ैर उत्पत्ति और आध्यात्मिक उन्नति हो ही नहीं सकती है। इसके बिना, कुछ भी अस्तित्व में नहीं आ सकता। यह 'पानी' की एक सादा मिसाल से समझा जा सकता है। 'पानी' लफ़्ज एक अक्षरी नाम है; लेकिन यह अपने आप में वह नहीं है, जिसे वह इंगित करता है। इसी तरह 'नाम–शब्द' के आगे दो पक्ष हैं– पहला, अक्षरी नाम है, और दूसरा, चेतन धारा, जो सब सृष्टि के पृष्ठ में काम कर रही है। इसे लफ़्जों में बयान करना कठिन है।

'नाम' या व्यक्तिगत हक़ीक़त या 'शब्द' आदि से, अर्थात रचना से पहले से ही मौजूद था। यह एक 'अशब्द' और 'अनाम' अवस्था है, जो मालिक कुल थी, जिसके चेतन इज़हार से इच्छा उत्पन्न हुई, जिसके साथ हिलोर जुड़ी थी, जिसने अपने आपको 'श्रुति' (नाद) और 'ज्योति' (प्रकाश) के रूप में प्रकट किया। जैसे–जैसे चेतन धारा नीचे उतरी, इससे चेतन मंडल बनते गये। इसके और आगे उतरने से यह चेतन–जड़ और जड़ (स्थूल) मंडलों की उत्पत्ति का स्रोत बनी। यह चेतन–धारा कुल मालिक से निकली और यह ही सम्पूर्ण सृष्टि के खंडों–ब्रह्मंडों की कर्ता–धर्ता है। 'शब्द या नाम' का बोध, जो गुरु नानक

साहिब ने कराया है, उस आध्यात्मिक धारा को इंगित करता है, जो अपने आप में ज्योति सिद्धांत के रूप में प्रकट होता है और सूक्ष्म आध्यात्मिक मंडलों में पूर्णता से गूंजता रहता है। यह 'नाम' या 'शब्द', सुरत के उत्थान में मदद देता है, जो कि 'नाम' का ही तत्व होने के कारण उसकी ओर खिंची जाती है– क्योंकि "आत्मा परमात्मा की श्वास हैं।" (– बाइबिल), "रूह अम्रे–रब्बी है" (– कुरान)। सभी संत, जो भी इस संसार में गुरु नानक साहिब से पहले या बाद में आये, उन्होंने इस जीवन–सिद्धांत या 'शब्द' की महिमा की है। कुछेक अन्य प्रमाण सभी धर्म–ग्रंथों में दिये गये इस मूल सत्य के बारे में पाठक को विश्वस्त कराने में मददगार होंगे।

4. भिन्न—भिन्न धर्मों से प्रमाण

ईसाई मत :

सेंट जॉन अपने सुसमाचारों में लिखते है:

आदि में शब्द था, शब्द प्रभु के साथ था, और शब्द ही प्रभु था। प्रारम्भ में यह प्रभु के साथ था। इसी शब्द से सब चीजें प्रकट हुईं और उसके सिवाय कोई ऐसी चीज़ नहीं थी, जो कि बनी हो।

— पवित्र बाइबिल (जॉन 1:1-3)

प्रभु के शब्द से ही दिव्य लोक बने।

फिर

उसने कहा और सब कुछ हो गया।

— पवित्र बाइबिल (भजन—संहिता 33:6-9)

उस शब्द की ताक़त से ही सब चीज़ें बनी हुई हैं।

— पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 1:3)

घास सूख जाती है, फूल मुरझा जाते हैं, मगर प्रभु का शब्द सदा अटल रहेगा।

— पवित्र बाइबिल (यशायाह 40:8)

ऐ मालिक! तुम्हारा शब्द आसमानों में बसा हुआ है।

— पवित्र बाइबिल (भजन—संहिता 119:89)

सेंट पॉल कहते हैं :

प्रभु का 'शब्द' दो-धारी तलवार से भी ज़्यादा जीता—जागता, शक्तिशाली और तेज़ है। यह 'शब्द' आत्मा को

जिस्म–जिस्मानियत से अलग कर देता है और हृदय के विचारों और इच्छाओं से भी अलग कर देता है।

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 4:12)

हिन्दू मत :

हिन्दू धर्मग्रंथों के अनुसार सारी रचना 'नाद' से बनी है। वे इसे 'आकाशवाणी' भी कहते है। इसके उल्लेख वेदों में भी मिलते हैं, जो कि संसार के सबसे पुरातन ग्रंथ है। उपनिषदों में भी इसी का ज़िक्र है, मिसाल के तौर पर, 'नाद बिन्दु उपनिषद्', जिसमें इस विषय को बड़े स्पष्ट रूप से लिया गया है। 'हठ–योग प्रदीपिका' ने भी इसे 'शब्द सिद्धांत' कह कर इसका बयान किया है।

स एष परवरीयानुद्गीथ: स एषोऽनन्त:
परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकोञजयति य
एतदेवंविद्वान्परोवरीयाँ्समुद्गीथमुपास्ते।

– छांदोग्य उपनिषद् (1.9.2)

अर्थात, वह, परमात्मा, ही श्रेष्ठ से अति श्रेष्ठ उदृगीथ है, वह अंतरहित है। जो इसे इस रूप में समझता है, वही अतिश्रेष्ठ उद्गीथ की उपासना करता है और उसी का जीवन निरंतर अधिक से अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है और वही उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त कर लेता है।

सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संघाय वैष्णवीम्।
श्रणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा।
इभ्यस्यमानो नादोऽयं वाह्यामाबृणुते ध्वनिम्।
पक्षाद्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत्।

– नादबिंदु उपनिषद् (31,32)

अर्थात, योगी को सिद्ध आसन से बैठकर, वैष्णवी मुद्रा [दोनों हाथों से दोनों कान, आँख बंद करके बैठना] धारण करके दहिने कान में अंदर से उठने वाली ध्वनि को सुनना चाहिये। इस तरह का नाद का किया गया

अभ्यास बाहर की ध्वनियों को ढक लेता है। इस तरह से 'अकार' तथा 'मकार' के दोनों पक्षों पर विजय प्राप्त करके धीरे धीरे सारे प्रणव को जीतें। इसे पार करने पर साधक तुरीय पद को दो सप्ताह के लगातार अभ्यास से पा जाता है।

आदौ जलधिजीवीमूतभेरीनिर्झर सम्भव:।
मभ्ये मर्दलशव्दाभो घण्टाकाहलजस्तथा।
अन्ते तु किंकणीवंशवीणाभ्रमरनिस्वन:।
इति नानाविधा नादा: श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मत:।

— नादबिंदु उपनिषद् (34,35)

अर्थात, पहले पहल समुद्र, मेघ, झरने की जैसी फुसफुसाती आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं। फिर स्पष्ट होने पर भ्रमर, वीणा, वंशी तथा किंङ्किणों की तरह मधुर होती है। इस तरह से ध्वनि धीमी से धीमी होती हुई कई-कई तरह से सुनाई देती हैं। फिर धीमे से धीमे नाद का विचार करना चाहिये।

थियोसॉफ़िकल सोसाइटी की संस्थापक, मैडम ब्लावाट्स्की अपनी पुस्तक, 'Voice of the Silence' ('मूक की ध्वनि') में वर्णन करती हैं कि,

> जब हम अंतरमुख हों तो कई प्रकार की आवाज़ें सुनाई देती हैं। पहला शब्द बुलबुल की मीठी आवाज़ की तरह होता है, जैसे विरहा से भरी रागिनी अपने साथी से बिछुड़ने के समय आलापी जाती है। उसके बाद अभ्यासियों को झाँझ की आवाज़ की तरह सुनाई देती है, जो तारा मंडल को प्रकट करती है। फिर एक ध्वनि समुद्र में घिरे या निवास करते किसी देवता की सुरीली रागिनी है। इसके बाद वीणा के आलाप और फिर बाँस की मुरली की आवाज़ की तरह कानों में सुनाई देती है। यह तुरही यंत्र की आवाज़ में बदल जाएगी और अंत में घोर बादल की गरज की तरह सुनाई देगी। फिर एक आवाज़ सब दूसरी आवाज़ों को मिटा देती है। उसके बाद वे सब समाप्त हो जाती हैं और कुछ भी सुनाई नहीं देता।

इस्लाम :

मुसलमान सूफ़ियों ने इसे 'सुलतान–उल–अज़कार'– ज़िक्रों का बादशाह बताया है। अन्य सूफ़ी इसे 'सौते–सरमदी'– रूहानी आवाज़ कहते हैं। इसे 'निदाए–आसमानी'– आसमानों से आने वाली आवाज़, 'कलामे–क़दीम'– पुरातन–कलाम और 'कलमा' या 'शब्द' भी कहते हैं। कलमे से ही चौदह तबक़ (भवन) बने।

एक महान सूफ़ी, ख़्वाजा हाफ़िज़ कहते हैं :

कस नदानिस्त कि मंजल गहे माशूक़ कुजास्त।
ईं क़दर हस्त कि बांगे-जरसे मे आयद।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.200)

अर्थात, आसमानों से हर दम आवाज़ आ रही है। मैं नहीं जानता तुम दुनिया के भ्रमजाल में क्यों फ़िजूल फंसे पड़े हो। कोई नहीं जानता कि मेरे प्यारे की मंज़िल कहाँ है, मगर इतना ज़रूर है कि वहाँ से घंटे की आवाज़ आ रही है।

फिर,

पंबा-ए बसवास बेरूँ कुन ज़े गोश।
तां बगोशत आयद अज़ गरदूं ख़रोश।
पस महले वही-गरदद गोशे-जान।
वही चिह् बुवद गुफ़्तन अज़ हिस्से-निहाँ।

— मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 2, पृ.170)

अर्थात, शक़ (संशय) की रुई को अपने कानों से निकाल दो, ताकि तुम्हें आसमानी राग सुनाई दे। संसारी चीज़ों से मत जुड़ो। ज़िंदगी का अमृत वहाँ (ऊपर) से बरस रहा है। प्यार की मधुर ध्वनि दिव्य लोकों में गूंज रही है और भक्तों की आत्माओं पर 'शब्द' की आवाज़ों के द्वारा ईश्वरीय कृपा प्रदान होती हैं।

मौलाना रूम साहिब, अपनी 'मसनवी' में कहते हैं :

गर बगोयम शमाए जां नग़महा।

जानिहा मुर्दहा यर बर ज़िनन्द दख़महा।

— मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 1, पृ.212)

अर्थात, नास्तिक मत बनो, दिव्य लोकों से आने वाली आवाज़ से अपने आप का जोड़ो। तुम्हारी रूह में उसी का इज़हार होगा। यह क्या है, उसी गुप्त (शब्द) की झलक है। अगर मैं उन रागों का तुम्हें थोड़ा भी ज़िक्र करूँ, तो (जिस्म रूपी) क़ब्रों से रूहें उठ खड़ी हों जायँ।

फिर,

चर्ख़ रा दर ज़ेरे पा आर शुजाअ।
बिशनो अज़ फ़ौके फ़लक बांगे समाअ।।

— मौलाना रूमी (मसनवी, दफ़्तर 2, पृ.190)

अर्थात, ऐ बहादुर रूह, आसमानों को पैरों के नीचे ला, ताकि आसमानों की चोटी पर 'समाअ' की बांग को सुन सके।

गुफ़्त पैग़म्बर कि आवाज़े ख़ुदा। मे रसद दर गोशे मन हमचू सदा।
मुहर बर गोशे शुमा बिनहादे हक। ता ब आवाज़े ख़ुदा नारद सबक।

— मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 2, पृ.173)

अर्थात, हज़रत साहिब ने यह ऐलान किया कि मुझे 'ख़ुदा की आवाज' इस क़दर साफ़ सुनाई पड़ी, जैसे कोई भी दूसरी आवाज़ होती है। लेकिन अफ़सोस! ख़ुदा ने तुम्हारे कानों पर मोहर लगा दी है और इसी वजह से तुम्हें रूहानी आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती।

एक और मुसलमान फ़कीर, शाह नियाज़ कहते हैं :

अम्रे-रब्बी अस्त रूह व सिर्रे-ख़ुदास्त,
ज़िक्र बेकाम व बेज़बां ऊ रा अस्त।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

अर्थात, रूह 'अम्रे–रब्बी' (मालिक की अंश) है। यह ख़ुदा का राज़ है, जिसका ज़िक्र बिना तालू और ज़बान के होता है। अफ़सोस! कि जीव इस शरीर और शरीर के बंधनों में बंधा हुआ है और ख़ुदा की पाक आवाज़ को नहीं सुनता। वह प्रीतम हरदम तुम्हारे साथ कलाम करता है, पर अफ़सोस, कि तुम उस कलामे–क़दीम (पुरातन आवाज़) को नहीं सुनते।

हमा आलम पुर अस्त अज़् आवाज़्,
लेक दरहाए-गोशे-फ़ना बुवद मरफ़ूअ।
बिशनवी यक् कलामे-ला-मक्तूअ,
अज़् हदूसो फ़ना बुवद मरफ़ूअ।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

अर्थात, सारा आलम 'शब्द–ध्वनि' से गुंजायमान हो रहा है। उसे सुनने के लिये तुम्हें अपने अंदर के कानों पर लगी मुहरों को तोड़ना होगा। तभी तुम्हें कभी अन्त न होने वाला संगीत सुनाई पड़ेगा और वह तुम्हारी रूह को मौत के फंदे से निकालकर परे की दुनिया में ले जाकर आज़ाद कर देगा।

बाज़् करदन हमीं बस अस्त तुरा,
बंद साज़ी रहे-शुनीदन रा।

— दीवाने–नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

अर्थात, कानों को खोलने का केवल इतना ही मतलब है कि बाहरी आवाज़ों को सुनना बंद करो।

संत-मत :

सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय।।

— कबीर साहिब की शब्दावली भाग 1 (शब्द 15, पृ.93)

मन लोचे बुराइयाँ गुरु शब्दी इह मन होड़िये।

— गुरु तेग़ बहादुर

सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ.938)

शब्दै धरती शब्दु आकाशु। शब्दै शब्दु होआ प्रगासु।
सगली सृसटि सबद के पाछे। नानक सबद घटो घट आछे।।

— प्राण संगली, भाग 2 (64, पृ.7)

राम नामि मनु बेधिआ अवरु कि करी विचारु।।
सबद सुरति सुखु ऊपजै प्रभ रातउ सुख सारु।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.62)

मुकति भई बंधन गुरि खोल्हे सबदि सुरति पति पाई।।
नानक राम नामु रिद अंतरि गुरुमुखि मेलि मिलाई।।

— आदि ग्रंथ (मलार म.1, पृ.1255)

पारि साजनु अपारु प्रीतमु गुर सबद सुरति लंघावए।।
मिलि साधसंगति करहि रलीआ फिरि न पछोतावए।।

— आदि ग्रंथ (तुखारी म.1, पृ.1113)

साकत नरि सबद सुरति किउ पाईऐ।।
सबद सुरति बिनु आईऐ जाईऐ।।
नानक गुरमुखि मुकति पराइणु हरि पूरै भागि मिलाइया।।

— आदि ग्रंथ (मारू म.1, पृ.1042)

उतपति परलउ सबदे होवै।।
सबदे ही फिरि ओपति होवै।।

— आदि ग्रंथ (माझ म.3, पृ.117)

भाग सुलखणा हरि कंतु हमारा राम।।
अनहद बाजित्रा तिसु धुनि दरबारा राम।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म.5, पृ.846)

जिनि धारे बहु धरणि अगास।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म.5, पृ.184)

तुलसी साहिब फ़रमाते हैं कि,

शब्द भेद साखी लखै सोई साध सुजाना हो।
अगम निगम-गम चीन्ह के बानी पहचाना हो।।

— तुलसी साहिब की शब्दावली (पृ.147)

दूलन साहिब फ़रमाते हैं :

सबदहि ताला सबदहि कुंजी, सबद की लगी है जँजिरिया।।
सबद ओढ़ना सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया।।
सबद सरूपी स्वामी आप बिराजैं, सीस चरन में धरिया।।

— दूलनदास की बानी (शब्द 2, पृ.9)

चरनदास जी कहते हैं :

जब से अनहद घोर सुनी।
इंद्री थकित गलित मन हूवा आसा सकल भुनी।।
घूमित नैन सिथिल भइ काया अमल जु सुरत सनी।
रोम रोम आनन्द उपज करि आलस सहज भनी।।
मतवारे ज्यों शब्द समाये अन्तर भींज कनी।
करम भरम के बन्धन छूटे दुबिधा बिपति हनी।।

— चरनदास की बानी, भाग 2 (शब्द 11, पृ.6)

स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज 'शब्द' का इस प्रकार वर्णन करते हैं :

सब की आदि शब्द को जान। अंत सभी का शब्द पिछान।।
तीन लोक और चौथा लोक। शब्द रचे यह सब ही थोक।।
शब्द सुरत दोउ धार समान। पुरुष अनामी के यह प्राण।।
चेतनता सब इनकी मान। शब्द बिना कोइ और न आन।।..
शब्दहि सेवक शब्दहि स्वामी। शब्दहि घट घट अंतरजामी।।..
शब्दहि मछली शब्द नीर। शब्द बखानें सत्त कबीर।।..
शब्द बतावें नाानक पीर। शब्द लखावें तुलसी धीर।।..
शब्द शाह और शब्द बज़ीर। राधास्वामी कहें समझ मेरे वीर।।

– सार बचन, पद्य (बचन 9, शब्द 3)

'शब्द' (ध्वनि) सम्पूर्ण रचना के भीतर बारम्बार गूँज रहा है। कोई जगह उससे ख़ाली नहीं। यह इस शरीर रूपी मन्दिर में ही गूंज रहा है।

प्रभु और इंसान के बीच की कड़ी 'शब्द' है। इस प्रकार, प्रत्येक शरीर परमात्मा का घर है। यह पवित्र 'नाम—शब्द' हमारे शरीरों के रोम—रोम में रमा हुआ है। इसकी ही मदद से, हम अपने क़दम उस स्त्रोत की ओर वापस ले जा सकते हैं, जहाँ से हम आए हैं। यही परमात्मा तक वापस जाने का सही रास्ता है; अन्य कोई रास्ता नहीं है।

सत्गुरु फ़रमाते हैं :

तीरथ वरत सुचि संजमु नाही करमु धरमु नही पूजा।।

नानक भाइ भगति निसतारा दुबिधा विआपै दूजा॥

– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.75)

'शब्द' हमें बाहरी लगाव से हटाता है और अपने ठिकाने की ओर वापस ले जाता है। यह मार्ग गुरु नानक साहिब ने और उनके बाद, नौ गुरुओं ने भी सिखाया। नामदेव जी, रविदास जी, कबीर साहिब तथा अन्य भक्त, जिनकी वाणी 'गुरु ग्रंथ साहिब' में दर्ज है, हर एक इस 'सुरत–शब्द योग' यानी आत्मा को शब्द (परमात्मा) के साथ मिलाने की विद्या के माहिर थे। ऐसे दूसरे भी थे, जैसे कि भक्त ध्रुव, भक्त प्रह्लाद, तुलसी साहिब, शम्स तबरेज़, मौलाना रूम, हाफ़िज़ शिराज़ी और ईसा, जिन्होंने 'शब्द' का अभ्यास किया। दादू साहब, पलटू साहिब और स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज– हर एक ने अपने–अपने वक़्त में इसी सत्य को सिखाया।

पवित्र 'नाम' या 'शब्द' का अभ्यास हर कोई ज़बान और तालू की मदद के बग़ैर कर सकता है। इसके करने में सामा. जिक धर्मों के बाहरी रीति–रिवाज़ों का किसी प्रकार का कोई बंधन नहीं। यह 'शब्द' एक तरह की चेतन–धारा को, जो उस मालिक 'एकंकार' (एक–आकार) से निकली है, परिभाषित करता है। इसने ही समस्त आत्मिक और स्थूल मंडल बनाये। जैसे–जैसे यह धारा एक मंडल से नीचे दूसरे मंडल में उतरती है, उनके सभी के अंतर और बाहर गूँजती रहती है। क्योंकि उच्चतर मंडलों के मुक़ाबले में नीचे के मंडलों में चेतनता कम है और स्थूलता अधिक, 'शब्द' की ध्वनि जैसे–जैसे यह नीचे उतरती है, बदलती जाती है। जैसे–जैसे यह पाँचों मंडलों से गुज़रती है, यह पाँच भिन्न–भिन्न ध्वनियाँ धारण कर लेती है। यह पाँच पहलू उस एक ही 'शब्द' के हैं। गुरु नानक साहिब ने इसे बड़े विस्तार के साथ 'जप जी' की पन्द्रहवीं पौड़ी में बयान किया है।

सम्पूर्ण 'गुरु ग्रंथ साहिब' में 'शब्द' की महिमा को बड़ी ख़ूबसूरती के साथ बयान किया गया है। उसमें कोई भी वाणी इसकी महिमा के

बग़ैर नहीं है। इसके कुछेक प्रमाण यहाँ तसल्ली के लिए दिए जाते हैं। अधिक विस्तार के लिए पाठकों से निवेदन है कि वे 'गुरु ग्रंथ साहिब' के विशाल ख़ज़ाने को पढ़ें।

प्रभि मसतके धुरि लीखिआ गुरुमती हरि लिव लाइओ।।
पंच सबद दरगह बाजिआ हरि मिलिओ मंगलु गाइओ।

— आदि ग्रंथ (माली गउड़ा म.4, पृ.985)

अनदिनु मेलु भइया मनु मानिआ घर मंदर सोहाए।।
पंच सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए।।

— आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.764)

पंचे सबद वजे मति गुरमति वडभागी अनहदु वजिया।।
आनद मूलु रामु सभु देखिया गुर सबदी गोविदु गजिया।।

— आदि ग्रंथ (कानड़े की वार म.4, पृ.1315)

पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी।।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती भगत कबीर, पृ.1350)

पंज सबद धुनि अनहद वाजे हम घरि साजन आए।।

— आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.764)

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं कि,

घर महि घरु देखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु।।
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु।।

— आदि ग्रंथ (मलार वार म.1, पृ.1291)

सबदु गुरू सुरति धुनि चेला।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ..943)

सभि सखीआ पंचे मिले गुरुमुखि निज घरि वासु।।
सबदु खोजि इहु घरु लहै नानकु ता का दासु।।

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म.1, पृ.1291)

भाई गुरुदास जी (सिक्ख विद्वान) स्पष्ट रूप से कह रहे हैं :

पंजे सबद अभंग अनहद केलिआ।

– भाई गुरदास, वारां (16:3)

पंजे तत उलंघिआ पंज सबद बजी वाधाई।

– भाई गुरदास, वारां (29:6)

दूसरे संतों ने इसी तरह इस विषय पर बयान किया है, जैसा कि आगे दिया गया है :

हर रोज़े पंज नौबत बर दरे-ऊ,
दी शत हर्मी कोबंद क़ौसे-किब्रयाई।
अगर उफ़्तद-बिगोश्त सौते-आँ कौस,
क्रिब ओ अज़ हसद या-बे रहाई।

– शम्स तबरेज़

ख़ामोश पंज नौबत बिशनौ ज़े आसमाने,
क-आँ आसमाने बैरूँ जा हफ़्त ओ ईं शश आमद।

– दीवाने–शम्स तबरेज़ (पृ.138)

5. 'शब्द' का भेद जानना

कई प्रकार की आवाज़ें रचना के भिन्न—भिन्न मंडलों में गूंज रही हैं। समझने के लिए इनको दो भागों में किया जा सकता है।

1. बायें तरफ़ से आने वाली आवाज़ें : यह काल की तथा जड़ता की आवाज़ें है, और ख़ास—ख़ास अन्तरीय विकारों से जुड़ी हुई हैं। बग़ैर इच्छा के भी, अभ्यासी इनकी ओर खिंचा चला जाता है। यदि कोई भी बायें तरफ़ से आती हुई मोह लेने वाली रागों में से एक को भी सुन लेगा, जिसका सम्बन्ध जिस विकार से है, वह अपने आप को विकारों के गहरे महासागर की गहराइयों में पायेगा। ऐसी आवाज़ों में बाहिर्मुखी और नीचे की ओर गिराने की शक्ति होती है। ऐसी भयानक हालत में वर्षों की मेहनत व्यर्थ चली जाती है और आत्मिक यात्री के मार्ग में बाधा आ जाती है। इसलिए इनसे सावधान होकर बचना चाहिए, क्योंकि यह आध्यात्मिक मार्ग से पथ—भ्रष्ट कर देती हैं।

2. दायें तरफ़ से आने वाली दूसरी आवाज़ें : ये आवाज़ें आत्मिक मंडलों से आती हैं और ये दयाल और ख़ालिस आध्यात्मिक हैं, जो कि अंतर्मुख और ऊपर ले जाने के गुण रखती हैं।

यह दो प्रकार की आवाजें इतनी अधिक आपस में मिलती—जुलती हैं और इतनी एक दूसरे के नज़दीक़ बज रही है कि इनको अलग—अलग करना मुश्किल है। मौलाना रूम इसलिए हमें चेतावनी देते हैं कि इन आवाज़ों में से सही आवाज़ को सावधानी से चुनें। वे कहते हैं :

बांगे गूलां हस्त बांगे आशना,
आशनाए कू कशद सुए फ़ना।

– मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 2, पृ.81)

अर्थात, ऊपरी आवाज़ों से मिलती–जुलती निचली क़िस्म की आवाज़ें नीचे गिराने की शक्ति रखती हैं और पतन की ओर ले जाती है।

ख़ास आवाज़ें, जिनमें ऊपर ले जाने की ताक़त है, वे संख्या में पाँच हैं, जैसा कि सब संतों ने बयान किया है, और संतों की दया से इनको पाया जा सकता है और उनकी संगत में इनके साथ जुड़ा जा सकता है। ऐसी ध्वनियाँ उन आत्मिक मंडलों का असर रखती हैं, जहाँ से उनका निकास होता है, और वे उनके साथ जुड़ने वालों पर भी वही प्रभाव डालती हैं। इनकी अपनी स्वार्गिक धुनें हैं, जिनके हर्षोन्माद वाले राग आत्मा को निर्व्यक्तिगत करके सांसारिक जीवन के बंधनों से मुक्त करते हैं।

जो भी आग के निकट जाता है, उसे गर्मी मिलती है– चाहे वह इसे अपनी मर्ज़ी से अपनाये या नहीं। इसी प्रकार, पवित्र 'नाम' या 'दिव्य–वाणी' के साथ लगने से आप अवश्य प्रभावित होंगे, आप चाहें या न चाहें, समय या समयांतर। जैसे ही आप उसके साथ लगेंगे, प्रभु की शक्ति आपको ज़रूर प्रभावित करेगी।

बाहरी राग का भी सब जीवित प्राणियों पर अद्‌भुत असर होता है। यह भारी दुख और अशान्ति, जिससे हर एक इंसान हमेशा घिरा हुआ है, के भार को घटाता है और विचारों से मुक्ति दिलाता है। इसकी मधुर और मनोहर धुनें रोज़ाना जीवन की गन्दगी हटाती हैं और आत्मा को मुग्ध करती हैं। यह मन को बाहरी संसार के शोर–शराबे से हटाता है। बनावटी तरीक़ों के प्रयोग के बग़ैर यह मन को एकाग्र करता है। संगीत, सचमुच, सदा से ही संतों की कला रहा है।

संगीत किस मानवीय प्रकृति को उत्तेजित और शांत नहीं कर सकता ?

— ड्राइडन [John Dryden- 'Song for Saint Cecelia's Day']

यदि बाहरी राग का कितना अद्‌भुत प्रभाव है, तो फिर अन्तरीय दिव्य राग क्यों न अधिक आकर्षक होगा? इसका लुभावनापन अनुपम है। यह आत्मिक चेतनता से परिपूर्ण है, जो इंसान को जिस्म–जिस्मानियत के सभी दुखों और दर्दों से उपराम कराता है। घोर संकटों और तनावों के बीच, हर कोई अन्तरीय धुनों से शान्ति प्राप्त कर सकता है और सांसारिक दुखों की तकलीफ़ों से बच सकता है।

ये आत्मिक धुनें रूहानी मार्ग की सहायक हैं। क़ामिल संत–सत्गुरु दीक्षा देने के समय पूरी तरह हिदायत देते हैं कि कैसे मंडल–दर–मंडल इनको प्रथक् किया जा सकता है और साथ ही साथ, कैसे ऊपरी रूहानी मंडलों तक पहुँचने के लिए इनकी मदद ली जा सकती है। इसके लिए किसी आत्म–अनुभवी संत की ज़रूरत है, जो आत्मा का 'हरि–नाम' या 'दिव्य शब्द' से अन्तरीय अनुभव करा दे। उसके बग़ैर शाश्वत संगीत का राज़ ढका हुआ रहता है, जहाँ तक पहुँचना मुश्किल है। 'शब्द–सदेह' होते हुए, यह उसकी समर्था है कि वह उसे प्रकट करे और उसे सुना सके और इस प्रकार, सर्वशक्तिमान प्रभु के दरबार में ले जा सके।

गुरुमुखि कोटि उधारदा भाई दे नावै एक कणी॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.5, पृ.608)

दुख और सुख की व्याख्या :

यह एक आम अनुभव की बात है कि जब हम किसी चीज़ में लीन हो जाते हैं, तो स्वयं अपने आप को भूल जाते हैं। इस प्रकार की अपने आपको भूल जाने की आशीत अवस्था सिर्फ़ ध्यान को एक जगह केन्द्रित करने से ही प्राप्त होती है, और जिस समय हम उससे बलपूर्वक बाहर आ जाते हैं, हम अपने इर्द–गिर्द के वातावरण में सचेत हो जाते हैं और अपने आपको जीवनचर्या की तुच्छ गतिविधियों से भी अशान्त महसूस करने लगते हैं। क्योंकि हम अपनी सारी ज़िंदगी

भर सांसारिक कार्यकलापों व भोगों से सुख तलाशते आये हैं, हम उन्हीं से अपने आपको तादात्म्य पाते हैं। इस प्रकार हम सच्चे व परम आनन्द, जो उनकी सुदूर हमारी आत्मा की गहराइयों में बसता है, के बारे में कुछ भी नहीं जानते। हम अपने आपको इन बनावटी ख़ुशियों से अलग नहीं कर पाते हैं, जब तक कि अन्तर्मुख होकर इनसे अधिक बेहतर किसी चीज़ का रस नहीं ले लेते।

सारा संसार इस वास्तविक ख़ुशी और आनन्द के केन्द्र की खोज में भटक रहा है। सांसारिक चीजें हमें सुख नहीं दे सकतीं, क्योंकि वे अपने निरंतर बदलते रहने के गुण के कारण अपने अस्तित्व के हर पल बदलती रहती हैं। जबकि बाहरी चीज़ों का अपने आप में कोई सुख नहीं है; फिर भी, जब हमारा लगाव उनसे होता है, तो उनसे हमें सुख का आभास होता है। परन्तु, इन वस्तुओं की क्षणभंगुरता के गुण के कारण, इन्हें बदलने का दृष्यप्रपंच अपनाना पड़ता है। माया की रंग–बिरंगे बदलावों को देखने से मन प्राकृतया घबराने और विकृत होने लगता है और प्रायः दुर्दशा का शिकार हो जाता है। सच्चा सुख केवल ऐसी वस्तु के साथ लगने से मिल सकता है, जो कि स्थाई, लाफ़ानी और अनादि हो। प्रकृति माता के क्षणभंगुर सुख इंसान को वास्तविक सुख नहीं दे सकते। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

जो सुख को चाहै सदा सरनि राम की लेह॥

– आदि ग्रंथ (सलोक म.9, पृ.1427)

मन को बाहरी इन्द्रियों से मुक्त करने के लिए, इसको आत्मा के सुरीले और मधुर राग– 'शब्द' के साथ जोड़ना होगा, जो सबके अन्तर और सब कुछ के द्वारा गूंज रहा है। क्योंकि यह शाश्वत है, इससे हमारा लगाव भी वैसा ही होगा, और हम कोई तबदीली या दुख–दर्द महसूस नहीं करेंगे। यदि एक बार मन शाश्वत संगीत में महव हो जाये, तो यह बाहरी प्रलोभनों में नहीं भटेकगा। इसकी मदद से सांसारिक दुखों में घिरी आत्मा आत्मिक मंडलों में बढ़ती है। 'शब्द' अपने आप में प्रकाशमान ज्योति तथा

मधुर नाद है। जहाँ हिलोर है, वहीं ध्वनि भी है। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। प्रकाश हिलोर का ही अपरिहार्यिक नतीजा है, क्योंकि प्रकाश और ध्वनि साथ–साथ चलते हैं।

जह अनहत सूर उज्यारा।। तह दीपक जलै छंछारा।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ भगत नामदेव, पृ.657)

गुरु नानक साहिब 'जप जी' की आठवीं पौड़ी से पन्द्रहवीं पौड़ी तक अन्तरीय 'नाद– शब्द' के साथ जुड़ने के अनगिनत लाभ बताते हैं।

आत्मा को अंतर नाम के साथ जुड़ने ('सुरत-शब्द योग') के अनेक फल :

अंतरीय सहभागिता के ये सब फल, जिस्मानी, सदाचारी, मानसिक तथा आध्यात्मिक पहलुओं के रूप में मिलते हैं।

'नाम' मन और शरीर को सन्तुलन में रखता है। भक्तों पर शन्ति का बोलबाला रहता है; मन के सभी विस्तार सदा के लिए ध्वस्त हो जाते हैं। सभी विकारों का मन पर ज़ोर हट जाता है। मन की चिन्ताओं पर शीतल मरहम लग जाता है। यह व्यर्थ जल्दबाज़ियों को समाप्त कर देता है और उसके साथ–साथ घबराहट के तनाव और समस्त मानसिक परेशानियों और खींचातानियों को भी दूर कर देता है। 'नाम' हमें भौतिक और सांसारिक दुखों–दर्दों से मुक्त कर देता है। ध्यान की अंतर्मुख वृत्ति होने से मन स्थिर हो जाता है और आत्मा मानसिक झगड़ों से छुटकारा पा जाती है। यहाँ तक कि अहंकार भी, जो कि सबसे पुराना रोग है, भी हवा हो जाता है, और इससे संसार में आवागमन का चक्र भी समाप्त हो जाता है। आत्मा के आवागमन की प्रक्रिया का स्वाभाविक कारण स्वःनिश्चयकारी इच्छा तथा अहंकार हैं।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

जब इह जानै मै किछु करता।।

तब लगु गरभ जोनि महि फिरता।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.278)

जन्म–मरण के अविरल चक्र से छुटकारा पाने का एकमात्र इलाज अहंकार को नष्ट करना है। समस्त संसार में व्याप रही शाश्वत दिव्य–धारा से एकात्मता प्राप्त करने वालों की यह स्पष्ट परीक्षा है। ख़ुदी को मिटाने के लिए की गई सारी मेहनत, सही ओर जाने का एक प्रयास है। इसे आत्मा का सभी सांसारिक वस्तुओं से अलगाव और सांसारिक बंधनों से छुटकारा पाना कहा जाता है। संक्षेप में, सच्चाई इसी बात में है कि आत्मा को समस्त व्यक्तिगतता से परे किया जाये, ताकि बुराई बिल्कुल जड़ से मिट जाए। 'अहम्–पना' जो आज संसार में छाया हुआ है, उसे मिटाने के अनेक नुस्ख़े हमें मुक्ति के आदर्श को दिलाने में असफल हो जाते हैं, क्योंकि इन सब तरीक़ों से अहम् बढ़ता जाता है और अधिक से अधिक बलशाली होता जाता है, और मिटता नहीं। जब तक हम परमात्मा के हुक्म के चेतन सहकर्ता नहीं बन जाते, तब तक विनम्र नहीं हो पाते हैं।

संसार में ज़िंदा होने का तथ्य ही हमें ज़िंदग़ी की क्रियाशैली सीखने को मजबूर करता है। कैसे और कहाँ से हम अस्तित्व में आये, और मौत के बाद हमारा क्या होगा? आधुनिक विज्ञान की व्युत्पत्ति के सिद्धांत ('Theory of Evolution') की खोज हमें पूरी तरह संतुष्ट नहीं करती क्योंकि यह सिर्फ़ भौतिक पहलुओं से सम्बद्ध है, न कि उच्चतर इज़हार के मंडलों के बारे में, जो कि आत्मिक चेतन मंडल हैं। पुरातन महात्माओं ने अनुभव किया कि बिना अंतर्मुख हुए, बहिर्मुखी विकास नहीं हो सकता। कोई भी वस्तु शून्य से नहीं उपज सकती– इस सिद्धांत से पुष्टि होती है कि अंतर्मुखता का बहिर्मुखता से पहले होना अनिवार्यिक है। बहिर्मुखी विकास को जानने के लिए अंतर्मुखता को जानना ज़रूरी है, ठीक वैसे ही जैसे प्रभाव को जानने के लिए उसका उपादान कारण को जानना ज़रूरी है। दोनों को एक–दूसरे से जुदा नहीं किया जा सकता।

स्थूल शरीर ही सब कुछ नहीं है। इसके भीतर दो शरीर और है– सूक्ष्म तथा मानसिक, जो कि अधिक महीन और कम नष्ट होने

वाले तत्वों से बने हैं। यह शरीर मन, बुद्धि और क्षुद्र अहम् से बने हैं। इनके भीतर कई जन्मों के संस्कार भरे हुए हैं। केवल अंतरीय इंसान को समझने से ही विकास का रहस्य समझ में आता है। आत्मा निरन्तर मन और माया के बंधनों से छूटने के लिए तत्पर रहती है, ताकि यह ऊपर उड़ान भर कर परमात्मा, जिसकी यह निज अंश है, मिलने के लिए जद्दोजहद करती है। यह परिश्रम सिर्फ़ तब ख़त्म होगा, जब यह सभी प्रकार के अहम्, जो जन्म—मरण के चक्कर का मूल कारण है, को त्याग कर तीन लोकों– स्थूल, सूक्ष्म और कारण के मंडलों के परे उठ पाती है ।

एल्डस हक्स्ले (Aldous Huxley) इसी बारे में कहते हैं :

विकास के सिद्धांत की तरह ही, जन्म—मरण के सिद्धांत की जड़ें भी सच्चाई के क्षेत्र में टिकी हैं, परन्तु इसे नासमझ और जल्दबाज़ मूल निरर्थकता के आधार पर नकारेंगे।

आपे का भाव समाप्त होना केवल 'शब्द—नाम' के साथ जुड़ने से ही हो सकता है, किसी अन्य विधि से नहीं, जैसा कि सत्गुरुओं की शिक्षा से पता लगता है। वे फ़रमाते हैं :

नानक गुरपरसादी उबरे हउमै सबदि जलाइ।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार म.4, पृ.592)

हउमै विचि जगु बिनसदा मरि जंमै आवै जाइ।।
मनमुख सबदु न जाणनी जासनि पति गवाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.33)

हउ हउ करदी सभ फिरै बिनु सबदै हउ न जाइ।।
नानक नामि रते तिन हउमै गई सचै रहे समाइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म.3, पृ.426)

दुखि सुखि एहु जीउ बधु है हउमै करम कमाइ।।
बिनु सबदै भरमु न चूकई ना विचहु हउमै जाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.67)

मनसा आसा सबदि जलाई॥
गुरुमुखि जोति निरंतरि पाई॥

— आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ.940)

अंतरीय सच्चा त्याग केवल 'शब्द' के साथ जुड़ने से ही होता है। त्यागी पुरुष के लिये, कुदरत के सारे मायावी रंग कोई लगाव नहीं रखते। हर एक वस्तु का त्याग करने से इंसान परिपूर्ण आत्मा के साथ जुड़ सकता है। उसका इर्द–गिर्द के पर्यावरण से मोह हट जाता है और उसका पदार्थ से बंधन समाप्त हो जाता है। इस प्रकार, उसका जन्म–मरण फिर नहीं होता। इसके पश्चात जिस्म–जिस्मानियत की ज़िंदग़ी और संसार में माया के जाल के आकर्षण, उसके प्रभु के रास्ते पर रुकावट नहीं बनते।

सत्गुरु नानक फ़रमाते हैं :

सचै सबदि रते बैरागी आवणु जाणु रहाई हे॥

— आदि ग्रंथ (मारू म.3, पृ.1044)

राग में वैराग्य केवल 'शब्द' की मदद से पाया जा सकता है। वह जो कुछ भी करता है, कर्तव्य के तौर पर करता है, फल के लगाव से नहीं। दुख का मूल कारण इंसान के मोह पर निर्भर है। जो कुछ हम करते हैं, उसके फल से अलग होने की असमर्थता से हम उसी से पकड़े जाते हैं। चाहे वे कितनी भी क़ीमती हों या कितना ही हम उनके लिए तड़प रहे हों, सभी वस्तुओं से, अलग रहने की शक्ति को हम अवश्य दूर रखें।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽस्त्व कर्मणि॥

— श्रीमद्‌भगवद्‌गीता (II: 47)

वह कौन सी वस्तु है, जो हमें मोह छुड़ाने की शक्ति को पाने में मददगार होती है? यह अन्य कुछ नहीं, केवल 'शब्द 'के साथ जुड़ना ही है। सत्गुरुवर इसके बारे में बड़ी ख़ूबसूरती से फ़रमाते हैं :

सो निहकरमी जो सबदु बीचारे॥

— आदि ग्रंथ (माझ म.3, पृ.128)

फिर,

आत्मा जीवन-रौ के आनन्द से, जो सब का मूल स्रोत है, भरी जाती है, जो इसे दिन प्रतिदिन तेज़ी से सूक्ष्म करता है। यह आत्मा को ऊपरी चेतन मंडलों पर चढ़ने के योग्य बनाता है, जब तक कि यह अपनी दिव्य मंज़िल तक नहीं पहुँचती, जो सचखंड में है। यहाँ, प्रलय और महाप्रलय की हद से परे, यह निराकार के साथ पूर्णता से मेल प्राप्त करती है।

अब इंसान को सभी उच्चतर और आलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह आप में धर्मग्रंथों की आत्मा को पहचानता है, आत्मा–परमात्मा को जानने का साधन और आत्मा–परमात्मा के रहस्य को जानता है और सब गुणों का धनी बन जाता है। वह मौत के समय अति प्रसन्न होता है, न कि दूसरों की तरह, जो उस समय भयानक शारीरिक पीड़ा में होते हैं। क्योंकि उसने अपनी आत्मा की धाराओं को अपनी मर्ज़ी से शरीर से सिमेटने के अभ्यास द्वारा किया है,वह मौत के समय होने वाले सब कष्टों से बच जाता है।

सब संतों ने आत्मा को स्थूल जिस्म से अलग करने की इस विधि के बारे में ज़ोर दिया है और यह शिष्य के लिए अत्यंत आवश्यक है कि वह उच्चतर मंडलों में प्रवेश कर पाये।

गुरु नानक साहिब बयान करते हैं :

मुइया जितु घरि जाईऐ तितु जीवदिया मरु मारि॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.21)

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ॥

— आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.730)

दादू साहिब दृढ़ता के साथ फ़रमाते हैं :

दादू पहिली मरि रहै, पीछे तै सब कोइ।

– दादू दयाल की बानी, भाग 1 (जीवत मृतक को अंग, 23)

मरना सीखो, ताकि तुम (हमेशा की) ज़िंदगी पा जाओ।

– थॉमस–आ–केम्पिस

मूतु कबल अन्नमूतु

– क़ुरान शरीफ़ (3.143)

मौलाना रूम साहिब बड़ी अच्छी तरह परिभाषित करते हैं कि मरने का क्या मतलब है। वे सुनिश्चित करते हैं :

ता नमीरी सूद कै ख़्वाही रबूद, रौ बमीरो बहरा बरदार अज़् वुजूद।

– मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 6, पृ.363)

अर्थात, ऐ दोस्त! अगर तुम हमेशा की ज़िंदगी चाहते हो, तो मरने से पहले मरो। केवल ऐसी मौत के द्वारा ही अदरीस (संत) आध्यात्मिक मंडलों में पहुँचे हैं। तुम कई बार मरे, मगर तुम माया के परदों में ढ़का रहे; इसलिए कि सचमुच जो मरना था, वह तुम्हें नहीं आया।

चूं ज़ि हिस्स बेरूं नयामद आदमी, बाशद अज़् तस्वीरे-ग़ैबी आ अज़्मी।

– मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 3, पृ.106)

अर्थात, जब तक तुम्हे सच्चा मरना नहीं आता, तब तक तुम्हारा जन्म–मरण का चक्कर ख़त्म नहीं होता। जब तक तुम सारी सीढ़ियाँ नहीं चढ़ लेते, मकान की छत पर नहीं आ सकते। जिस प्रकार अगर एक आदमी सौ सीढ़ियों में से सिर्फ़ 98 चढ़ जाए, वह छत तक नहीं पहुँच सकता या जिस प्रकार किसी आदमी के पास सिर्फ़ 99 गज़ रस्सी हो, सौ गज़ गहरे कुएँ से पानी की बाल्टी नहीं भर सकता। जब तक रूह जिस्म से पूर्ण तौर पर नहीं सिमटती जन्म–मरण का चक्कर ख़त्म नहीं होता। जब तक तुम्हारी आत्मा की ज्योति अपने आप को दिव्य प्रकाश में न खो दे, और जब तक हम तारा मंडल से ऊपर नहीं उठ जाते, याद रखो, सूरज, चन्द्रमा और सत्गुरु–स्वरूप प्रकट नहीं होगा।

नै चुनां मर्गे कि दर गूरे रवी, बल्कि अज़ तुल्मत सुए नूरे रवी।
नै चुनां मर्गे कि दर गूरे रवी, मर्ग-तब्दीली कि दर नूरे शवी।

— मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 3, पृ.106)

अर्थात, इसी प्रकार, ऐ अक़्लमन्द इंसान! जब तक इस जिस्म का परदा नहीं हटता, वह स्वरूप नहीं आता। इसलिए तुम इस सच्ची मौत को कबूल कर और जिस्म का परदा हटा दो। वह ऐसी मौत नहीं, जो तुमको क़ब्र में पहुँचा दे। यह आत्मा का सिर्फ़ जिस्म से अलग होना है- एक तबदीली है, जो तुम्हें एक नई ज़िंदगी देती है।

सच के अभिलाषियों से मुस्तफ़ा साहिब कहते हैं कि मुर्शिद तुम्हें यह मौत इसलिए देना चाहता है, ताकि तुम हमेशा की ज़िंदगी को पा जाओ, ताकि जब तक तुम ज़मीन पर जीवित रहो, तुम जिस्म को छोड़ सको और तुम्हारी आत्मा आसमानों पर सफ़र कर सके। रूह के रहने की जगह ऊपरी मंडलों में है। अगर इंसान एक बार यह मौत मर जाए, तो फिर उसकी आत्मा का आना जाना ख़त्म हो जाता है। जिसने जीते-जी अपनी आत्मा को जिस्म से सिमेटना सीख लिया है, यह मौत उसके लिए अचानक नहीं। जब तक तुम मरते नहीं, तब तक तुम क्या लाभ उठा सकते हो? जाओ और मरो, ताकि तुम इस ज़िंदग़ी का सच्चा रस ले सको। मौत के पहले मरने का राज़ यह है कि ऐसी मौत के द्वारा मालिक की दया मिलती है।

कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

कबीर जिसु मरने ते जगु डरै मेरे मनि आनन्द।
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानन्दु।

— आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ.1365)

ऐसा मुक्त पुरुष मौत की घाटी से पार निकल जाता है। शरीर से जुदा होने के समय, वह अपने आप ख़ुशी-ख़ुशी आत्मा की धाराओं को अंतर समेट लेता है, क्योंकि ऐसा करना उसका रोज़ाना का काम है और वह इसका अभ्यासी है। ऐसी मौत बाक़ी सभी को अन्तिम समय में होने वाले किसी भी दुख और दर्द से परे होती है। हिन्दुओं के धर्मग्रंथ मौत के समय होने वाले इस दर्द को हज़ारों बिच्छुओं के

इकट्ठे डंक मारने के समान बयान करते हैं। मुसलमान इसको उस दर्द की तरह बयान करते है कि जैसे काँटों वाली झाड़ी पाख़ाने के रास्ते डालकर मुँह के रास्ते निकाल दी जाये। हर एक इंसान ने किसी न किसी समय मरते आदमी की पीड़ा को अवश्य देखा होगा। आख़िरकार इंसान मालिक के घर जाने का रास्ता पा जाता है। इस प्रकार वह 'शब्द' के साथ लगने से मरते समय ऐसी मौत से बच जाता है और आध्यात्मिकता की ऊँचाइयों को छूने और दूसरों की मदद करने के लिए समर्थ बन जाता है।

इस अभ्यास के करने को 'सुरत–शब्द योग' यानी प्रभु के साथ आत्मा को जुड़ने का साधन कहा जाता है। गुरु नानक साहिब ने इसे ही मन और पदार्थ के बंधन से आत्मा की मुक्ति पाने और प्रभु से एकमेक होने का सच्चा रास्ता बताया है। वे फ़रमाते हैं :

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे॥
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे॥

— आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ.938)

बिनु सबदै पिरु न पाईऐ बिरथा जनमु गवाइ॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.31)

साच सबद बिनु महलु न पछाणै॥

— आदि ग्रंथ (आसा म.1, पृ.414)

प्रयास, जो 'शब्द' के साथ जुड़ने के लिए किए जायें, सही हैं। 'गुरु ग्रंथ साहिब' इसको प्रमाणित करते हैं :

सबदि मरहि फिरि ना मरहि सेवा पवै सभ थाइ॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म.4, पृ.649)

6. सुमिरन का अर्थ तथा अभ्यास

'शब्द'– शाश्वत संगीत के साथ जुड़ना– सुमिरन या लगातार प्रभु की याद के जीवन से ही मुमकिन है। सुमिरन का मतलब यह नहीं है कि ख़ाली ज़बान से उच्चारण करते रहना, जिसका कि सत्गुरु ने खंडन किया है। कबीर साहिब बड़े ज़ोरदार लफ़्ज़ों में फ़रमाते हैं :

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 25, पृ.89)

फिर,

माला मो से लडि़ पड़ी, का फेरत हौ मोय।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (सुमिरन का अंग 20, पृ.89)

"बिना सोचे समझे प्रभु का नाम मत लो," परन्तु कुछ आदर्श सामने रख कर लो। लगातार मालिक की याद प्रेम का ही दूसरा रूप है। जिसके साथ प्यार होता है– उसका ध्यान सदा रहता है। लगातार प्रभु की याद करने के लिए सत्गुरु सबको उपदेश देते हैं, क्योंकि "जिसका चिन्तन करोगे, उसी का रूप बन जाओगे।"

भक्ति–भाव से उपजे प्रेम से मन को (सुरत या तवज्जोह की ज़बान के साथ) अपने शरीर में एक ख़ास केन्द्र पर एकाग्र करके मालिक की याद करना ही सुमिरन है। यह दुनिया के सब बाहरी दुनिया के विचारों से मन को हट–हटा कर, मन को परमात्मा की याद में लगा कर, अपने आपको एक केन्द्र पर टिकाने का साधन है। इर्द–गिर्द के वातावरण

ने हमारे मन को इतना खींचा हुआ है कि एक पल के लिए भी हमारा ध्यान बाहर की चीज़ों से नहीं हटता। जब से हम पैदा हुए हैं, यह प्रक्रिया पुरज़ोर चालू है और अब यह हमारे जीवन की पक्की आदत बन गई है।

आदत को इंसान का 'दूसरा स्वभाव' कहा जाता है। इस परिस्थिति में मन को बाहरी आकर्षणों से निकालना बहुत मुश्किल है। चाहे जितना इसे रोकने की कोशिश करोगे, उतना ही यह सांसारिक चीज़ों की ओर खिंचता चला जाता है। इसका बाहरी चीज़ों से गहरा नाता हो चुका है। यह सदा हमेशा पराई और नूतन वस्तुओं के बारे में सोचता रहता है और दुनियावी माया और चकाचौंध में लम्पट हो जाता है। जो हमारी आदत बन चुकी है, उसे हम मिटा भी सकते हैं। संसार और सब सांसारिक चीज़ों के विचार बाहरी पदार्थों से बन्धन का स्त्रोत हैं। सत्गुरु भी में ऐसा ही अंतर्मुखी तरीक़ा अपनाते हैं, जैसे कि सृष्टि माता हमें बाहरी संसार से बांधने में लगाती है, और मन को पूर्ण रूपेण एक निशाने पर केन्द्रित कराते हैं। मन को पवित्र 'नाम' से लगाकर परमात्मा का सतत् ध्यान मन का संसार से लौटा लाता है और एक जगह केन्द्रित रखता है। वास्तव में एकाग्रता मुश्किल है, क्योंकि मन को क़ाबू करने में समय लगता है। इसलिए मायूस नहीं होना चाहिए। असफलताएँ क़ामयाबी की सीढ़ियाँ हैं। "जहाँ चाह है, वहाँ राह है।" हमें अभ्यास में दृढ़ रहना चाहिए, जब तक कि मन क़ाबू में न आ जाए। 'नाम' की महिमा सदा हमें इस जीवन के उच्चतम आदर्श की ओर प्रेरित करती है। यह मन को शान्त करता है और पथभ्रष्ट होने से बचाता है।

'नाम' का लगातार सुमिरन मन को बाहरी विषयों से हटाकर दिव्यता तथा अलौकिकता पर केन्द्रित कराता है। यह मन को अपने केन्द्र पर टिकाये रखता है, ताकि इच्छाएँ इसे बाहर न खींच सकें और संसार के जादुई राग—रंग इस पर अपना असर न दिखा पायें। इस अभ्यास के करने की विधि को गुरु नानक साहिब ने तकनीकि तौर पर 'सुमिरन' कहा है। यह आत्मा की धाराओं को शरीर से समेट कर

आत्मा के स्थान (दो भ्रूमध्य) पर आँखों के पीछे आज्ञा–चक्र पर लाने में मदद करता है। जब तक आत्मा की धारा अपने केन्द्र पर सिमट कर नहीं आती, आत्मा जिस्म से ऊपर और आगे नहीं जा सकती। आध्यात्मिक मार्ग पर बढ़ने के लिए शरीर से आत्मा को सिमटाने का यह एक तरीक़ा बहुत ज़रूरी है। यह सुमिरन की प्रारम्भिक क्रिया से सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। किसी गुरुमुख सत्गुरु की मदद से, अन्तर्मुख होने और अपने आपको जानने का अभ्यास आसान हो जाता है।

सुमिरन में एक बीज मौजूद है, जो आत्मिक–उन्नति में मदद करता है। गुरु नानक साहिब इस राज़ का वर्णन 'जप जी' की 5, 6 और 13वीं पौड़ियों के आख़िर में और विस्तार के साथ पौड़ी 33 में प्रकट करते हैं। सचमुच, ख़ुशक़िस्मत वह इंसान है, जो हमेशा अपने सत्गुरु के आशीर्वाद से मौज करता है।

बाहरी संसार से मोह लगातार याद का ही परिणाम है, जिसके कारण इंसान 'क्रिया व परिणाम' के क़ानून के आधीन अपने वातावरण से चिपका रहता है। इंसान के मन में बसे हुए संस्कार आगे चलकर अवश्य फलीभूत होंगे। कोई भी इसके फल से बच नहीं सकता। प्रभु की निरन्तर याद से हमने इन सस्ंकारों से बचना है, और इसे अपने जीवन का मुख्य सिद्धांत बनाना है। पुनर्जन्म के द्वारा, इंसान उस परिवेश की ओर खिंचा चला जाता है, जिस ओर उसका मोह होता है। जब आप सारे समय प्रभु का चिन्तन करते रहेंगे, तो आपको कोई भी वस्तु बांध नहीं सकती और इसके बाद कोई जन्म नहीं लेना पड़ेगा। इसीलिए कहा गया है :

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै॥

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.262)

सुमिरन इंसान को अन्तर्मुखी और एकाग्रचित्त बनाता है। आंतरिक मंडलों में मन की एकाग्रता से अद्‌भुत शक्तियाँ क़ुदरती तौर पर आ जाती हैं, क्योंकि ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ नाम की दासियाँ हैं :

नव निधि नामु निधानु रिधि सिधि ता की दासी।।

— आदि ग्रंथ (सवैये म.4, पृ.1397)

जा की गाँठी नाम है, ता के है सभ सिद्धि।।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि।।

— कबीर साखी संग्रह (नाम का अंग 33, पृ.92)

किन्तु, सत्गुरु शिष्य को इनका प्रयोग करने के लिए सावधान करते है, क्योंकि ये बाहरी प्रवृत्ति की ओर ले जाती है और अपने ध्येय से, जो इंसान ने अपने सामने रखा है, उससे दूर कर देती हैं। सुमिरन से सच्चा ज्ञान, उच्च ध्यान–संकेन्द्रन तथा सद्बुद्धि प्राप्त होती है। इसका नतीजा यह होता है कि इंसान व्यक्तिगत चेतना को त्याग देता है, जो फिर निराकार प्रभु में लय हो जाती है, जिसके कारण एक प्रकार की जाग्रत समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। इसका लफ़्ज़ों में बयान नहीं हो सकता, परन्तु यह एक वास्तविक सच्चाई है, जो मृत्यु के दायरे से परे है। अंहकार की भावना नष्ट हो जाती है, आत्मिक धारायें सिमटने लगती हैं और इंसान एक ज्योति के प्रभामंडल में जागने लगता है। शरीर में ऐसे लगने लगता है, जैसे कि उसमें अपना आपा है ही नहीं। अन्तरीय जीवन के मुक़ाबले में, इस जीवन को सूर्य की एक किरण की भाँति कहा जा सकता है।

प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.263)

सुमिरन, इंसान को पवित्र 'नाम' के महारस प्राप्त करने और उसका उपभोग करने के योग्य बनाता है। गुरु नानक साहिब इसका वर्णन विस्तार से उदाहरण के तौर पर 'जप जी' की बीसवीं पौड़ी में देते हैं।

प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.263)

टैनिसन (Tennyson) अपनी कविता, 'The Ancient Sage' में वर्णित करते हैं कि अपने ही नाम का बार–बार उच्चारण करने से क्या प्राप्त

होता है। इसके बारे में एक पत्र में अपने नाम पर ध्यान केन्द्रित करने से कैसे उन्होंने महान जीवन को पाया; वे लिखते हैं :

> **बचपन से ही, जब मैं बिल्कुल अकेला हुआ करता था, एक प्रकार की जागृत भाव-समाधि का अनुभव मैं करता आया हूँ। यह प्रायः तब होता था, जब शान्त अवस्था में मैं अपना ही नाम दोहराता रहता था, जिससे कि, एक ही पल में, जैसेकि व्यक्तित्व की चेतनता की गहनता में से, व्यक्तित्व ही घुल-मिल कर धुंधला होता एक अन्तहीन सत्ता में ओत-प्रोत होता प्रतीत होता था। यह कोई उलझ भरी परिस्थिति नहीं थी, बल्कि स्पष्ट से स्पष्ट व निश्चित से निश्चित, वर्णनातीत, जहाँ मृत्यु प्रायः एक हास्यास्पद रूप से असम्भव प्रतीत होती थी और व्यक्तित्व का हनन, एक विनाश न होकर, मात्र एक सच्चा जीवन। मैं अपने अशक्त वर्णन पर शर्मिन्दा हूँ। क्या मैने यह नहीं कहा था कि यह अवस्था अनिर्वचनीय है?**
>
> (श्री बी. पी. ब्लड के नाम एक पत्र में, मई 7, 1874)

रूस का बादशाह, ज़ार पीटर भी इस एकाग्रता के अभ्यास का आदी था। वह भी अपने नाम पर ध्यान करने से अपने आप (ख़ुदी) को भूल जाता था, किन्तु सत्गुरु प्रभु के सुमिरन का उपदेश देते हैं और अपने नाम के सुमिरन का नहीं। अपने नाम का ध्यान इंसान को अपने आप की महवियत की ओर ले जाता है, जो कि प्रभु की उच्च चेतनता के मुक़ाबले में बहुत हीन है।

सुमिरन करने के कई तरीक़े हैं : (1) जो ज़बान की सहायता से किया जाए; इसे "बैखरी" कहते है। (2) जो कंठ में ज़बान से तालू की नोक से किया जाए; इसे "मध्यमा" कहते हैं। (3) जो हृदय में श्वासों की धारा के साथ किया जाए; इसे "पश्यंति" और (4) जो प्राणों की हिलोर के साथ किया जाए; इसे "परा" कहा जाता है। योगियों के अभ्यास करने का आख़िरी तरीक़ा है; सत्गुरु इसे करने की सलाह नहीं देते। पहले तीन तरीक़े भी पूर्ण एकाग्रता नहीं देते; इनसे मन

प्रायः बाहर भटकता रहता है, जबकि जप भी साथ–साथ यंत्रवत् होता रहता है। सत्गुरु इसीलिए मानसिक सुमिरन (ख़्याल– सुरत की ज़बान से) करने को कहते हैं। इसे 'ज़िक्रे–रूही' करके बयान किया गया है।

प्रभु के वर्णात्मक नामों का जाप धीरे–धीरे मन से करना, सुमिरन के अभ्यास की शुरूआत है। शुरू में यह तरीक़ा बाहरी रहता है, परन्तु कुछ समय के बाद यह आंतरिक हो जाता है। तब प्रभु का लगातार ख़्याल, बग़ैर रुकावट के जारी रहता है। इसलिए सत्गुरु इसका वर्णन करते हैं, जब वे कहते हैं :

नानक गुरुमुखि नामु जपीऐ इक बार॥

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.265)

एक बार शुरू की गई याद लगातार और निरंतर होने लगती है और फिर व्यक्ति प्रभु को नहीं भूलता। कबीर साहिब कहते हैं :

कबीर राम कहन महि भेदु है ता महि एकु बिचारु॥
सोई रामु सभै कहहि सोई कउतकहार॥

– आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ.1374)

फिर, सत्गुरु फ़रमाते हैं :

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ॥
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ॥

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म.3, पृ.491)

हमें आगे बढ़ने से पहले, जो कुछ ऊपर कहा गया है, उसका ख़ुलासा करना चाहिए। पूर्ण पुरुषों की नज़र में, मनुष्य जीवन की गर्ज़ मालिक से पूर्ण तौर पर मिलाप करना है। हमें हमेशा उस स्त्रोत, जहाँ से हमारा आग़ाज़ हुआ है, से मिलना चाहिए। परन्तु, हम उस ध्येय तक कैसे पहुँच सकते हैं?

प्रभु मनि भावै ता हुकमि समावै हुकमु मंनि सुखु पाइआ॥
अनदिनु जपत रहै दिनु राती सहजे नामु धिआइआ॥

– आदि ग्रंथ (धनासरी म.4, पृ.690)

अहंकार का नाश (ख़ुदी का मिटाना) या नम्रता, एक ऐसा रास्ता है, जो उस प्रभु के हुक्म को सुमिरन द्वारा जानने में मदद देता है। यह पहले ही विदित किया गया है कि सुमिरन जिस्म से आत्मा की धाराओं को समेटने में मदद करता है। जब पूर्ण तौर पर आत्मा जिस्म से सिमट जाती है, तभी आत्मा का उच्च आत्मिक मंडलों में चढ़ना मुमकिन है। इसको और अपने आप और सृष्टि के राज़ को समझने के लिए थोड़ी सी व्याख्या की आवश्यकता है।

7. सृष्टि के तीन विशाल खंड और उनके विशेषण

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि रचना तीन महान खंडों में बँटी हुई है।

पहला, 'सच और शुद्ध चेतनता का दायरा,' जो माया से परे है।

प्रथमे वसिया सत का खेड़ा।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म.5, पृ.886)

यह महान चेतनता का लोक है, और पदार्थ (माया) का यहाँ नामो–निशान तक नहीं। यहाँ की सत्ता को 'अकाल' कहा जाता है। यह वह लोक है, जहाँ प्रभु आप बसता है और इसे विशुद्ध आत्मिक (निर्मल–चेतन) देश कहते हैं। यह मौत और विनाश की पहुँच से रहित है। जो कोई इस देश में पहुँचता है, सच्ची मुक्ति प्राप्त कर लेता है। सत्गुरु कहते हैं :

निरंकार कै देसि जाहि ता सुखि लहहि महलु।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.1, पृ.595)

पुनः,

सच खंडि वसै निरंकारु।।

— आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 37, पृ.8)

दूसरा महान खंड निर्मल चेतनता और सूक्ष्म माया से बना हुआ है। इसको 'पार–ब्रह्मांड' (महाकारण लोक) कहते है। यहाँ चेतनता सूक्ष्मतम रूपी पदार्थ से मिश्रित है; चेतनता पदार्थ पर पूरी तरह से हावी है। इस देश में चेतन सत्ता का बोलबाला है। यह देश सृष्टि के महाप्रलय के समय ध्वस्त हो जाता है। यह खंड 'महाकाल' का कहा जाता है।

तीसरा लोक चेतनता और स्थूल माया का खंड है और इसे 'ब्रह्मांड' (कारण लोक) कहते हैं। इसे 'काल' का खंड भी कहा जाता है। इस लोक में दोनों, चेतनता और माया एक बराबर हैं। यह ब्रह्मांडी मन का क्षेत्र है। इसको विभिन्न महापुरुषों ने अलग–अलग नामों से पुकारा है। प्रलय के समय इसका नाश हो जाता है। इंसान इस देश में इसके नीचे वाले देशों से अधिक सुरक्षित हैं। यह ब्रह्मांड (कारण, त्रिकुटी), अंड (सूक्ष्म, सहस्रार) व पिंड (स्थूल) लोकों से निर्मित है। अंड माया या जड़ता का इलाक़ा है। यहाँ माया प्रबल है और चेतनता उसके अधीन है। इस लोक में चेतनता, माया के साथ संबंध होने के कारण, जन्म–मरण के चक्कर के क़ानून के अनुसार अति दुख में घिरी हुई है। पिंड में माया का प्रभाव इतना अधिक है कि चेतनता अपने आपको प्रकट नहीं कर पाती।

उच्च मंडलों जाते समय, जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर आने के बाद, अंड में हम अपने आपको माया से आस–पास घिरा पाते हैं। फिर हमें ब्रह्मांड में ऊपर चढ़ना होगा, जहाँ हम अपने आपको अधिक बेहतर महसूस करेंगे; परन्तु फिर भी यहाँ हम विनाश के ख़तरे से बचे नहीं रह सकते। पहला सुरक्षित लोक, 'सचखंड' है, जो महाकाल और महाप्रलय की हद से भी परे हैं।

संक्षेप में, यह सम्पूर्ण समष्टि (macrocosm)– महान सृष्टि का नक़्शा है। ये तीनों खंड लघु रूप में इंसान के अंदर भी बस रहे हैं। यदि आप समष्टि के बारे में जानना चाहते हैं, तो पहले हमें व्यष्टि (microcosm) के बारे में जानना होगा। गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

काइया अंदरि सभु किछु वसै खंड मंडल पाताला।।
काइया अंदरि जगजीवन दाता वसै सभना करे प्रतिपाला।।...
काइया अंदरि आपे वसै अलखु न लखिया जाई।।
मनमुखु मुगधु बूझै नाही बाहरि भालणि जाई।।...
काइया अंदरि रतन पदारथ भगति भरे भंडारा।।
इसु काइया अंदरि नउखंड पृथमी हाट पटण बाजारा।।

इसु काइया अंदरि नामु नउ निधि पाईऐ गुर कै सबदि वीचारा॥...
काइया अंदरि ब्रहमा बिसनु महेसा सभ ओपति जितु संसारा॥

– आदि ग्रंथ (सूही म.3, पृ.754)

एक अन्य संत भी इसी बारे में फ़रमाते हैं :

जो ब्रहमंडे सोई पिंडे जो खोजै सो पावै॥

पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरु होइ लखावै॥

– आदि ग्रंथ (धनासरी भगत पीपा, पृ.695)

इसी सत्य के बारे में मुसलमान फ़क़ीरों ने भी वर्णन किया है :

मस्जिदे कूरां ज़ि आबो गिल बवद,

मस्जिदे साहिब दिलां रा दिल बवद।

अर्थात, जो साहिब दिल से सच्चे ज्ञानी हैं, उनका हृदय ही सच्चा मन्दिर और मस्जिद है, जिसमें मालिक की प्राप्ति होती है।

उपरोक्त तीन खंडों को लघु रूप में इंसान के शरीर के अंतर पाया जा सकता है।

इंसान रचना के महान तीन खंडों का एक संक्षिप्त नमूना है :

1. आत्मा या सुरत आध्यात्मिक खंड, संचखंड का प्रतिनिधित्व करती है।

2. मन या मानसिक लोक का ब्रह्मांडी मन से संबंध है।

3. स्थूल शरीर या भौतिक लोक तीन शरीरों से निर्मित है– कारण, सूक्ष्म तथा स्थूल।

स्थूल शरीर माँस का खोल है। यह स्थूल तत्व और स्थूल कर्मेंद्रियों से युक्त है : आँखें, कान, नाक, ज़बान, चमड़ी, इंद्री और गुदा। ये भौतिक मौत के समय छूट जाते हैं।

सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म तत्वों और सूक्ष्म इंद्रियों से बना हुआ है और स्वप्न अवस्था में कार्यरत रहता है। इसमें मन बसता है।

कारण शरीर इन दोनों शरीरों की मूल जड़ है। यह गहरी नींद (सुषुप्ति) की अवस्था में काम करता है।

आख़िरी दो शरीर मरने के बाद भी मन के साथ रहते हैं और प्रत्येक पुनर्जन्म के समय एक नया रूप स्थूल ढाँचे में धारण कर लेते हैं।

इस प्रकार, समष्टि व्यष्टि के भीतर ही व्याप्त रहती है। समष्टि का ज्ञान पाने के लिए व्यष्टि का ज्ञान ज़रूरी है। यदि कोई इन कोशों (परदों) को हटाकर अपने अंतर में चेतन लोक तक पहुँच पाये, वह सब दुखों और दर्दों से बच सकता है और सदा का आनन्द और शान्ति प्राप्त कर सकता है, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। स्थूल ज़िंदगी सभी तरह के दुखों से भरी हुई है और कोई इससे बच नहीं सकता, जब तक वह अपने आपको इससे अलग करने के योग्य नहीं हो जाता।

चेतन मंडल को पाना ही असल चीज़ है, क्योंकि इस शरीर में रहते हुए भी, यह आपको परमानन्द और महारस के ख़ज़ाने की ओर ले जा सकता है। केवल किसी सच्चे सत्गुरु की मदद से पवित्र 'नाम' (शाश्वत संगीत, जो इंसान के अंतरतम में गूंज रहा है) की डोरी पर सवार होकर, इस अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। 'नाम या शब्द' उच्च आत्मिक मंडलों (सचखंड) से नीचे स्थूल देशों में आता है। यह जीवात्माओं को प्रलय–महाप्रलय के मंडलों के परे ले जाने वाली जीवनदायी डोर है। अन्य सभी साधन ध्येय तक पहुँचने में असक्षम हैं।

'प्रभु की बादशाहत' आपके अंतर है, आप इसे अंतर में खोज सकते हैं। इस सीमित शरीर में ही 'शब्द' के साथ जुड़ा जा सकता है। आख़िरकार, यह आपको सच खंड ले जाती है।

व्यष्टि की समष्टि के लोकों से एकमेक होने की सम्भावना :

अब हम यह देखेंगे कि क्या यह मुमकिन है कि व्यष्टि और समष्टि का मेल हो पाये। इंसान व्यष्टि का एक नमूना है। इंसान के भीतर अचेत अवस्था में नाड़ी–केन्द्र विद्यमान हैं और इन्हें 'नाम'– दिव्य शब्द सिद्धांत' के अभ्यास के द्वारा सचेत किया जा सकता है।

शरीर या पिंड में छः चक्र हैं, जिनका ब्रह्मांड के छः चक्रों से पारस्परिक संबंध है। ये, क्रमशः, पार–ब्रह्मांड या ख़ालिस चेतन मंडलों का अक्स हैं।

निचले छः चक्र– गुदा, इंद्री, नाभी, हृदय, कंठ की गण्डिकायें (ganglions) हैं और छठा, आँखों की भौंहों के बीच है, जिसको 'तीसरा तिल' या 'आज्ञा चक्र' कहते हैं ('जप जी' की पौड़ी 21), और यह इंसान में आत्मा का ठिकाना है। यहाँ से सारे जिस्म में आत्मा की धाराएँ फैलती हैं, जो स्थूल ढाँचे और इसके अंगों को जीवन्त करके उसे प्राण व बल प्रदान करती हैं। चेतन धाराएँ शरीर के लालन–पोषण में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं, और यदि इनको किसी हिस्से से खीच लिया जाए, तो वह अपनी प्राणशक्ति त्याग देता है और काम करना रोक देता है।

ब्रह्मांड और आध्यात्मिक लोक के छः चक्र भी हमारे अंतर पाये जाते हैं। जब आत्मा की धारा इन केन्द्रों पर क्रियाशील होती है, इंसान उनके तदनुरूप लोकों के साथ अपना सम्पर्क कर सकता है।

उच्चतर आत्मिक मंडलों पर पहुँचने से पहले आत्मिक धारा की एकाग्रता आवश्यक है :

इन केन्द्रों का संबंध समष्टि में ब्रह्मांड व आत्मिक खंडों के केन्द्रों से है। आत्मा की धारा व्यक्ति को उन महान खंडों का अवलोकन करने के क़ाबिल बनाती है। इसलिए, शुरूआत में आत्मबल को विकसित करना बहुत ज़रूरी है। यह आत्मा की धारा की एकाग्रता ही है, जो इनकी प्राप्ति के लिए सबसे बड़ा काम करती है। यदि इसको स्थूल जिस्म से जोड़ा जाए, तो इंसान को जिस्मानी ताक़त मिलती है। यदि इसको बुद्धि से जोड़ा जाये, तो इंसान को महान मानसिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार, यदि सुरत एकाग्रता प्राप्त कर ले, तो अपरिहार्य रूप से आत्मिक जीवन प्राप्त हो जायेगा और परमानन्द की प्राप्ति होगी। एक गुप्त नाड़ी है, जो इन सभी केन्द्रों

को जोड़ती है, जिसे 'सुषुम्ना नाड़ी' या 'शाह—रग' कहते हैं। इसके द्वारा ही चेतन धारा निम्नतम खंड से लेकर सचखंड पहुँचती है।

इस प्रकार, सुरत की एकाग्रता ही अंतर के खुलने की प्रक्रिया है, ताकि आत्मा उच्चतर मंडलों पर उन्नति कर सके। जब तक सभी बाहरी इंद्रियाँ स्वतःकेन्द्रित नहीं होतीं या अंतर्मुख टिकाव में नहीं आतीं, सुरत को ऊपर चढ़ने के लिए शक्ति नहीं मिलती। दस बाहरी इंद्रियाँ हैं— पाँच स्थूल कर्मेंद्रियाँ हैं— आँखें, कान, नाक, ज़बान और त्वचा, जिनके द्वारा पाँच दूसरी ज्ञान इंद्रियाँ— देखना, सुनना, सूंघना, चखना और स्पर्श, इंसान को बाहरी दुनिया में लम्पट करती हैं। इससे यह विदित होता है कि लगातार इन इंद्रियों का ख़्याल ही इंसान को बहिर्मुखी बनाता है।

तीन ख़ास स्रोतों से हमें हमेशा संसार का ख़्याल रहता है। पहला, हमें आँखें मिली हैं, जो बाहरी दृष्यप्रपंच को देखती हैं और मन के अंतर संस्कार लाती हैं। आँखों के ज़रिए लगभग 83 प्रतिशत प्रभाव हमारे अंतर बाहर से आते हैं। दूसरा ज़रिया कानों का है, जो हमारी तवज्जोह को बाहरी आवाज़ों की ओर खींचता है और बाहरी संसार की चीज़ों की याद दिलाता है। कानों के ज़रिये हम 14 प्रतिशत बाहरी प्रभाव प्राप्त करते हैं। तीसरा ज़रिया ज़बान (तालू) का है, जो चखने और बोलने की प्रक्रिया के द्वारा बाहरी संसार की याद हमेशा ताज़ा रखता है। बाक़ी तीन प्रतिशत बाहरी संस्कार ज़बान और अन्य इंद्रियों के द्वारा प्राप्त होते हैं। इन्हीं तीन मुख्य इंद्रियों के द्वारा ही इंसान बाहरी संसार के साथ हमेशा लगा रहता है और हमेशा बाहरी प्रभावों को लेता रहता है या दूसरों को अपने विचारों के प्रभाव देता है। इससे मन की शक्ति ज़ाया हो जाती है और व्यक्ति को दिवालिया बना देती है। हमें अपनी शक्ति को ज़ाया नहीं करनी चाहिये। हमें इसे संभाल कर रखना चाहिए, ताकि हम माया के विभिन्न परदों को फाड़ सकने के योग्य हो सकें, जिनमें आत्मा को अंतर में क़ैद है।

सुरत या आत्मा बाहरी संस्कारों के कारण वस्तुगत संसार से लगी हुई है। जब तक बाहरी इंद्रियाँ नियंत्रित नहीं होती और सुरत ज़िंदगी के बंधन से मुक्त नहीं होती, यह जिस्म–जिस्मानियत की चेतनता से ऊपर नहीं आ सकती। बोलने या चखने, देखने और सुनने की तीन इंद्रियाँ हमेशा अपनी–अपनी इंद्रियों के द्वारा शक्ति को बाहर ज़ाया करने का कारण हैं। आत्मा के अव्यक्तिगत होने के लिए यह ज़रूरी है कि हम अपनी शक्ति को अंतर्मुखता और आत्म–विश्लेषण के द्वारा भीतर व ऊपर की ओर एकत्रित करें।

सत्गुरु इस विधि की व्याख्या इन लफ़्ज़ों में करते हैं :

तीनों बंद लगाइ कर, सुण अनहद टनकोर।।
नानक सुन्न समाध महि, नहीं साँझ नही भोर।।

— प्राण संगली

एक मुसलमान फ़कीर, बू–अली कलन्दर साहिब इस विधि को इस तरह बयान करते हैं :

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब ब-बन्द
गर न बीनी सिर्रे हक बर-मन बखन्द।

— मसनवी बू–अली शाह क़लन्दर (पृ.30)

अर्थात, अपनी आँखें, कान और जबान को बंद करो और यदि ऐसा करने से हक (सत्य) का राज़ तुम पर न खुले, तो मेरी हँसी उड़ा लेना।

कबीर साहिब भी इसी बात को बड़े सुन्दर लफ़्ज़ों में इस तरह वर्णित करते हैं :

गुरि दिखलाई मोरी।। जितु मिरग पड़त है चोरी।।
मूँदि लीए दरवाजे।। बाजीअले अनहद बाजे।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ भगत कबीर, पृ.656)

तीनों बंद लगाय कर, मुख से कछू न बोल।
बाहर के पट देय कर, अंतर के पट खोल।।

— कबीर साहिब

गुरु अर्जन साहिब फ़रमाते हैं:

दस इंद्री करि राखै बासि॥ ता कै आतमै होए परगासु॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म.5, पृ.236)

जब कोई जागृत अवस्था में होता है, ये ज़बान, आँखों और कानों आदि की इंद्रियाँ भौतिक (स्थूल) ढाँचे में काम करती रहती हैं। और जब कोई स्वप्न अवस्था में होता है, सुरत अवचेतन में काम करती रहती है। यदि इन इंद्रियों को बाहर जाने से रोक दिया जाये, तो आत्मिक शक्ति का प्रभाव बढ़ जाता है और यह अधिक बलशाली हो जाती है। इस प्रकार ही इंसान व्यक्तिगत संसार का अनुभव करने का बल प्राप्त करता है, क्योंकि आत्मा की जीवन–रौ के बग़ैर, सुरत निष्क्रिय रह जाती है।

तीन संयमों का प्रयोग और उनकी विधि :

तीन संयमों का प्रयोग इंद्रियों को अंतर्मुख होने के प्रशिक्षण द्वारा करना चाहिए। पहला संयम बोलने का है, जो सुमिरन में लगना या सुरत की ज़बान से प्रभु की लगातार याद करना है। इसमें होठों और ज़बान की आवश्यकता नहीं पड़ती। सुमिरन करने की विधि और इसके प्रभाव को पिछले पृष्ठों में लिया गया है। दूसरा संयम देखने की इन्द्री से संबद्ध है और अंतरीय आध्यात्मिक आकृतियों का मनन कराता है, जो कि पूर्ण तौर पर ज्योतिर्मयता में खुलने से प्रकट होती हैं। यदि आप एकटक देखने (त्राटक) का अभ्यास करें या बाहर किसी काले नुक़्ते पर ध्यान टिकायें, आपको आपकी अपनी आंतरिक ज्योति बाहर नज़र आने लगेगी। इसी प्रकार, जब आप अंतर्मुख अपने ध्यान को दोनों आँखों के पीछे और बीच में टिकायें (जहाँ आत्मा का ठिकाना है), आप अपनी ज्योति को अंतर्मुख देखेंगे। वह आपकी अपनी ज्योति है और आगे ही मौजूद है; आपको अपनी आंतरिक दृष्टि वहाँ टिकानी है। जहाँ 'शब्द–पवित्र नाम' है, वहाँ प्रकाश है; जहाँ ध्वनि है, वहाँ प्रकाश है– दोनों एक दूसरे से जुदा नहीं। पाँच प्रकार की ज्योतियों का पाँच अलग–अलग आवाज़ों

से संबंध है। जब आत्मा अलग—अलग पाँच मंडलों पर ऊपर चढ़ती है, तो ये देखी और सुनी जा सकती हैं। 'मुण्डक उपनिषद्' में भी 'इंसान के सिर में पाँच अग्नियों' के बारे में लिखा गया है :

तस्मादग्नि: समिधो यस्य सूर्य:
सोमात् पर्जन्य ओषाधय: पृथिव्याम्।
पुमान् रेत: सिञ्चति योषितायां
बह्वी: प्रजा: पुरुषाात् सम्प्रसूता:।।

— मुण्डक उपनिषद् (अ.2, 1:5)

कई धर्म—ग्रंथ सत्गुरु के स्वरूप का प्रत्यक्ष ध्यान टिकाने के बारे में सुझाव देते हैं, जिससे कि मन एकाग्र हो सके। परन्तु आपको सत्गुरु के चेहरे के चमड़े और हड्डियों के स्वरूप का ध्यान नहीं करना है, परन्तु उसका ज्योति का ध्यान करना है, जो उसके भीतर प्रज्ज्वलित हो रही है। चेहरा, ख़ास कर आँखें और माथा, सत्गुरु की आत्मा के पूर्ण तौर से इज़हार करने का ठिकाना है। इसलिए सत्गुरु की आँखों पर ध्यान टिकाने से उनके संस्कार ग्रहण करने से इंसान की आत्मा दिव्यता के उदय के योग्य बनती है। यह अभ्यासी को काफ़ी मदद करती है। जब आप सत्गुरु का ख़्याल करेंगे, आप सत्गुरु का रूप हो जायेंगे। जिसका आप चिन्तन करेंगे, उसी का रूप बन जायेंगे।

अकाल मूरति है साध संतन की ठाहर नीकी धिआन कउ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म.5, पृ.1208)

सत्गुरु का स्वरूप दिव्यता प्राप्त करने का सबसे क़रीबी ज़रिया है, क्योंकि वह प्रभु का पुत्र है। जो भी (ख़ुदा के) बेटे को नहीं जानता, ख़ुदा (पिता) को नहीं जान सकता। इसलिए, यह कहा गया है :

गुर की मूरति मन महि धिआनु।।
गुर कै सबदि मंत्रु मनु मान।।
गुर के चरन रिदै लै धारउ।।
गुरु पारब्रहमु सदा नमसकारउ।।

— आदि ग्रंथ (गोंड म.5, पृ.864)

गुर के चरन रिंदै उरि धारे॥
अगनि सागर ते उतरे पारे॥

— आदि ग्रंथ (गोंड म.5, पृ.865)

गुरु की सेवा पाए मानु॥

— आदि ग्रंथ (गोंड म.5, पृ.864)

फिर,

अंतरि गुरु अराधणा जिहवा जपि गुर नाउ॥
नेत्री सतगुरु पेखणा स्रवणी सुनणा गुर नाउ॥
सतगुर सेती रतिआ दरगह पाईऐ ठाउ॥
कहु नानक किरपा करे जिस नो एह वथु देइ॥
जग महि उतम काढीअहि विरले केई केइ॥

— आदि ग्रंथ (गूजरी वार म.5, पृ.517)

यहाँ हमें सावधानी से आगे बढ़ना है। यदि गुरु, जिसका हम ध्यान करते हैं, सच्चा गुरु नहीं है, आप वह बन जाओगे, जो वह है। यह तरीक़ा तब तक ख़तरनाक है, जब तक आपको सत्गुरु की पूर्णता का पक्का विश्वास नहीं हो जाता। परन्तु, आप सच्चे और अपूर्ण पुरुष में भिन्नता नहीं कर सकते। इसलिए बचाव इसी में है कि आप अपने ध्यान को अंतर प्रकाश में टिकायें, जो कोई पूर्ण सत्गुरु आपको दीक्षा के समय देता है। सच्चा सत्गुरु अपने आप अंतर में, कुछ समय अभ्यास करने पर शनैः शनैः अपने नूरी स्वरूप में आने लगेगा, जिसकी पूर्णता का निर्णय आप सत्गुरु द्वारा दिये गए 'नाम' के लगातार उच्चारण के ज़रिये, हमेशा कर सकते हैं। केवल समर्थ गुरु ही दीक्षा के समय या कुछ अभ्यास के बाद अंतर में आ सकता है। यह आपको धोखे और प्रलोभनों से बचाकर रखेगा।

तीसरे संयम का संबंध सुनने से है। इसे शाश्वत संगीत से जोड़ना चाहिये, जो सब के अंतर और सब में गूंज रहा है। 'शब्द' प्रभु का असली सार–तत्व है। सत्गुरु फ़रमाते हैं :

ए स्रवणहु मेरिहो साचै सुनणै नो पठाए॥
साचै सुनणै नो पठाए सरीरि लाए सुणहु सति बाणी॥

— आदि ग्रंथ (रामकली आनंद म.5, पृ.922)

इसका यह मतलब नहीं है कि हम बाहरी संसार के तौर से इन इंद्रियों का उपयोग छोड़ दें। परन्तु इनको ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये कि ये आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में सहायक बनें और दोनों तरह से लाभदायक हों। प्रशिक्षण का मतलब यह है कि मन को अपने केन्द्र पर लाया जाए और इसे फ़ज़ूल बाहर भागने से रोका जाए। पहली प्रक्रिया, सुमिरन— आध्यात्मिक अनुसरण का आधार है। इसे तब तक जारी रखना है, जब तक कि मंज़िल तक न पहुँचा जाये। दूसरी और तीसरी प्रक्रिया— ध्यान और भजन, अपने आप एक—दूसरे के बाद कार्यशील हो जाते हैं।

नउ दरि ठाके धावतु रहाए॥ दसवै निज घरि वासा पाए॥
ओथै अनहद सबद वजहि दिनु राती गुरमती सबदु सुणावणिया॥

— आदि ग्रंथ (माझ म.3, पृ.124)

वाझण साहिब फ़रमाते हैं :

आप कैसे कहते हैं कि मालिक (पति) दूर है? इन दस द्वारों को बंद करने से आप उसे देख सकेंगे, अपने कानों में अनन्त शब्द की ध्वनि सुन सकेंगे, और आप गुलाम से मालिक बन जायेंगे। हर प्रकार की सुरीली ध्वनियाँ और मीठे राग, जिस्म में हैं। ओ वाझण! जो भी इस राग को सुनता है, वह भाग्यशाली है।

ये तीन संयम, एकाग्रता को उच्चतम अवस्था पर लाने में मदद करते हैं। पहला, सत्गुरु द्वारा दिए गए सिद्धिप्राप्त लफ़्ज़ों (charged words) का सुमिरन, मन को बाहर से वापिस और आत्मा को जिस्म से ऊपर लाता है, जहाँ शरीर में आत्मा का ठिकाना है। यह हमें अपने आपकी बाहरी परिधि से अपने केन्द्र में लाता है। यह इंसान के सामने ऊँचे आदर्श को पाने के लिए भी, जो अपने आपको जानना और

प्रभु को पाना है, प्रेरित करता रहता है। दूसरा साधन– ध्यान– यह भी एकाग्रता में और आत्मा को अंतरर्मुख होने में मदद करता है। आख़िरी साधन– भजन या मनुष्य कि अंतर में आत्मिक स्वरलहरियों को सुनना– यह आत्मा को परे ले जाता है, जहाँ से जीवन–रौ या पवित्र 'नाम', 'शब्द', या 'अंतरी राग' का आग़ाज़ हुआ है। जैसे कि घोर अंधेरी रात्रि में, जहाँ इंसान को कुछ दिखाई नहीं देता या न ही आगे–पीछे कुछ जान पड़ता है, दूर से कुत्ते भौंकने की आवाज़ या दूर किसी मोमबत्ती की फड़फड़ाती रोशनी राह पर मुसाफ़िर की मदद करती है, उसी तरह आत्मिक संगीत और चमकती प्रदीप्ति परमात्मा के सच्चे घर तक पहुँचने के लिए अभ्यासी आत्मा की एकाकी यात्रा में मदद करती है।

यह लम्बा साधन शरीर में दोनों आँखों के बीच और पीछे आत्मा के ठिकाने पर एकाग्रता से शुरू होता है, जहाँ पूरी तवज्जोह से मन (ख़्याल) द्वारा सुमिरन किया जाता है। यह इस समय शरीर में व्याप्त तवज्जोह को सिमटने के योग्य बनाता है और इसे आत्मा के केन्द्र पर एकाग्र करता है। इसका फल यह होता है कि इसका जिस्म के स्थूल ढाँचे की क़ैद से और बाहरी संसार से संबंध टूट जाता है। सुरत एक बार इस सीमित जीवन के बंधन से छूट जाए और क़ैद से आज़ाद हो जाए, तो फिर यह 'तीसरे तिल', 'नुक्ताए सवैदा' या 'तीसरी आँख' में प्रवेश करने के योग्य हो जाती है, और यहाँ से किसी संत–सत्गुरु की मदद से आगे, अंतर की ओर उच्चतर मंडलों में बढ़ने लगती है। सूक्ष्म मंडलों से गुज़रने के बाद, वह दशम द्वार पहुँचती है, जहाँ पवित्र अमृत का सरोवर, सच्चा 'अमृतसर', 'मान–सरोवर' या 'प्रयाग–राज' मनुष्य के अंतर में विद्यमान है। मुसलमान इसे 'हौज़े–क़ौसर' कहते हैं। इसमें स्नान करने से आत्मा सूक्ष्म, कारण परदों और सूक्ष्म माया से मुक्त हो जाती है। यही पवित्र अमृत रूपी जल का सच्चा स्नान (बपतिस्मा) है। आत्मा यहाँ अपने आप में स्थित, पूरी तरह से जाग जाती है और इसकी रोशनी अनेक सूर्यों से अधिक तेज़ हो जाती

है। यहाँ इसे सच्चे सार का आभास होता है, जो कि अन्य कुछ नहीं, बल्कि ख़ुद प्रभु ही हैं। आत्मा सत्गुरु के नूरी स्वरूप की मदद से आगे बढ़ती जाती है, जब तक कि निर्मल चेतन देश में नहीं पहुँच जाती–सचखंड, नया येरुशालेम या मुक़ामे–हक़– जहाँ सत्पुरुष निरंकार का निवास है। सत्पुरुष की मदद और दया से, आत्मा वहाँ से दर्जे–बदर्जे अनामी की ओर बढ़ती है। आत्मा का स्थूल देशों से आत्मिक–जड़ लोकों में जाने और फिर निर्मल चेतन मंडलों में चढ़ने के विषय के बारे में 'जप जी' की इक्कीसवीं पौड़ी में बताया गया है। गुरु साहिब ने पाँच आध्यात्मिक खंडों में से तीन अति महत्वपूर्ण खंडों का बयान किया है : 'तीसरा तिल'(शुरूआती स्थल), दसम द्वार और सच खंड। पाँच खंडों की व्याख्या भी 'जप जी' के आख़िर में दी गई है।

जो व्यक्ति 'तीसरे तिल' में प्रवेश करता है और सत्गुरु के नूरी स्वरूप को देख पाता है, उसे सत्गुरु का 'सिक्ख' या 'शिष्य' कहते हैं। जैसे–जैसे वह आगे तरक़्क़ी करता है, वह रूहानियत के तीसरे स्थान, दसम द्वार में पहुँचता है और 'साध' (जो मन को साध ले, एक अनुशासित व्यक्ति) या 'साधु' बन जाता है। जब कोई निर्मल चेतन खंड में पहुँचता है, वह 'संत' कहलाता है। जो सबसे उच्च आध्यात्मिक मंडल, अनामी या अशब्द, जो अलख और अगम भी है, में पहुँचता है, वह 'परम संत' यानी संतों का संत बन जाता है। इन अभिव्यक्तियों का पूर्ण पुरुषों की वाणियों में वर्णन मिलता है। ये ख़ास उपाधियाँ ख़ास स्वगुणार्थ के साथ जुड़ी हैं और इनका बाहरी पूजा–पाठ के तौर–तरीक़ों और बाहरी रीति–रिवाज़ या व्रत रखने या रात्रि जागरण आदि से कोई संबंध नहीं हैं।

गुरु नानक साहिब एक उच्च कोटि के संत थे, अनामी लोक तक पहुँचे हुए परम संत थे, जैसा कि उनके अपने शब्दों से विदित होता है :

सत लोक के ऊपर धावै, अलख अगम का तब गत पावै।
तिस ऊपर है सन्तन धाम, नानक दास कियो बिसराम।

8. गुरु-परमेश्वर : (God-Man)

गुरु-परमेश्वर (सत्स्वरूप हस्ती) के बिना, आत्मा का भेद कभी भी प्रकट नहीं हो सकता :

यहाँ सब कुछ जो यहाँ कहा गया है या कहा जाएगा, उसके बावजूद आत्मा का राज़ एक बंद किताब की तरह रहता है। रचना के पीछे जो सच्चाई है, उसको वर्णित करने के लिए कोई लफ़्ज़ नहीं हैं। उच्चतर मंडलों में आत्मा की चढ़ाई सम्भव नहीं है, जब तक कि उन मंडलों में प्रवेश न कराया जाये। यह सच है कि सुमिरन द्वारा या कुछ रोशनी कभी–कभी देखने से यदि कोई अपनी आत्मा की धाराओं को जिस्म से आँखों में समेटने के योग्य हो भी जाये, तो भी वहाँ कुछ नहीं होता, जो उसे उच्च मंडलों में ले जा सके या उसका मार्गदर्शन कर सके। बहुत से लोग इन शुरूआती अवस्थाओं में सदियों तक अटके रहते हैं और उन्हें ऊपरी मार्गदर्शन के लिए कोई मदद नहीं मिलती। कई इन अवस्थाओं को ही सब कुछ और अंतिम मंज़िल कह देते हैं; मगर वे अभी स्थूल तत्व की हद और सूक्ष्मतर तत्व की पकड़ में हैं। इसीलिए, अभ्यासियों को सूक्ष्म तत्वों की वज्र–गिरफ़्त से छुड़ाने के लिए किसी समर्थ पुरुष की मदद की ज़रूरत है। वह कोई ऐसा इंसान होना चाहिए, जो आध्यत्मिकता की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं से गुज़र चुका हो और जिसने पदार्थ (माया) की पहुँच के परे, निर्मल चेतनता के देश, सतनाम की यात्रा की हो। महापुरुष फरमाते हैं :

सति पुरखु जिनि जानिआ सतगुरु तिस का नाउ।।
तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हर गुन गाउ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.286)

आत्मा को मालिक की ओर ले जाने के लिए तीन अनिवार्यिक साधन :

प्रभु से मिलाप के लिए आत्मा की उन्नति के तीन साधन इस प्रकार हैं :

1. सत्गुरु या सच्चा गुरु

2. सत्संगत या सत्गुरु के चरणों में जिज्ञासुओं का एकत्र होना

3. सतनाम या सच्चा नाम

अनुभवी पुरुष प्रभु में रूहानी भाईचारे का नाता रखते हैं। वे मानवता के रत्न होते हैं, जिन्होंने अपने आप का जाना है और महाचेतन प्रभु से मिलाप किया है। वे परमात्मा में अभेद हो चुके हैं और पवित्र 'नाम' या दिव्य जीवन की पूर्णता के भरपूर डुलने वाले प्याले हैं। वे जीवन के आदर्श को पाने हेतु, मनुष्य जाति की अगवाई और मार्गदर्शन करने के लिए मनुष्य चोला धारण करते हैं। वे मालिक और इंसान के बीच रिश्ता जोड़ने वाली कड़ी जैसे हैं। वे ऐसी महान हस्तियाँ होती है, जिन्हें मानव जाति की संभाल का काम सौंपा गया है। वे प्रभु के सच्चे जिज्ञासुओं को अपनी देख–रेख में ले लेते हैं, ताकि 'एकंकार' के साथ उनका एकीकरण शीघ्रतर हो सके।

सत्स्वरूप हस्ती के गुण :

सच्चा सत्गुरु को बहुत जल्दी से नहीं पहचाना जा सकता। वह एक सत्स्वरूप हस्ती (God-man) है। एक सत्स्वरूप हस्ती को केवल कोई सत्स्वरूप हस्ती ही जान सकती है। उसे जिस्म–जिस्मानियत की ज़िंदगी के कहीं परे, रूहानियत के लबालब भरे प्याले की तरह बयान किया जा सकता है। उसने अपने आप को स्थूल और सूक्ष्म माया के परदों से आज़ाद किया है और पूर्ण सत् को, अन्तर और बाहर, अपनी आँखों से देखा है। वह आध्यात्मिक पहलू को, जो इंसान के अन्तर दबा पड़ा है, प्रकट करने के समर्थ है। सबको पहले से चार्ज की गई बैटरी की तरह एक जैसे हकूक अंतर में दिए गए है। मगर वह एक ऐसा है,

जिसने अपने आपको मालिक की महान कशिश वाली बैटरी के साथ जोड़ा है और उससे सीधे सन्देश प्राप्त कर रहा है। वह शाश्वत का मुखपृष्ठ बना हुआ है। हम सबको एक जैसे हकूक मिले है, मगर हमारी बैटरियाँ प्रभु से जुदा है। हमें दोबारा उसके साथ जुड़ने की आवश्यकता है, ताकि हम भी जीती–जागती बैटरियों की तरह काम कर सकें और परमात्मा के सन्देश लेने के क़ाबिल बन जाए। हमें किसी ऐसे की आवश्यकता है, जो ख़ुद जुड़ा हुआ हो, और हमारी बैटरियों को भी प्रभु के साथ दोबारा जोड़ सके। वह अपने आप में अनन्त की चमकती ज्योति संजो कर रखता है और हमारी बुझी हुई ज्योति को जगाने के समर्थ है। एक बुझी हुई ज्योति दूसरों की ज्योति जगाने में असमर्थ होती है। जब वे किसी पूर्ण पुरुष के चरणों में आते है, आध्यात्मिक तौर पर सभी अन्धे होते हैं। वह उनकी अन्तर की आँख खोलता है, जो बन्द हैं और उन्हें परमात्मा की ज्योति देखने के योग्य बनाता है। वह उनके अन्तर के कान खोलता है और उन्हें 'शब्द' या 'नाम' के मधुर और सुरीले राग सुनने वाले बनाता है।

क्राइस्ट ने कहा है :

तुम पूर्ण बनो, जैसे कि तुम्हारा पिता आसमानों में पूर्ण हैं।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:43)

पूर्णता प्राप्त करना सबके भाग्य में है और आख़िर में सभी पूर्णता की अवस्था प्राप्त कर लेंगे। जो कुछ अब हम हैं, वह सब हमारे पिछले कर्मों और विचारों के प्रभाव के कारण है। हमारा आगमी जीवन वैसे ही ढ़लता और निर्धारित रहता है, जैसा हम अब सोचते और करते रहते हैं। परन्तु, इसमें हमें बाहरी मदद लेने की मनाही नहीं है। एक फलदार पेड़ को अगर साधारण तौर पर अपने आप पर छोड़ दिया जाये, तो वह पाँच–छः सालों में फल देता है, पर यदि उसको वैज्ञानिक ढंग से खाद आदि दी जाए, तो बहुतायत में और जल्दी–जल्दी दो–तीन सालों में फल दे सकता है। इसी प्रकार, आध्यात्मिक जीवन का अनावरण किसी पूर्ण

पुरुष की सहायता से गतिशील हो जाता है। यह सहायता अनमोल है। ऐसी बाहरी सहायता आत्मा के अन्तरी पक्ष को उत्तेजित करती है। इससे आध्यात्मिक ज़िंदगी हमारे अन्तर जाग्रत होती है और आख़िरकार हमें सर्वोच्च आदर्श की ओर ले जाती है।

धर्म—ग्रंथ आध्यात्मिक जाग्रति लाने के योग्य नहीं :

ऐसी जीवन–रौ धर्मग्रंथों से प्राप्त नहीं की जा सकती। जैसे ज्योति, ज्योति से आती है, उसी तरह ज़िंदगी, ज़िंदगी से आती है। आत्मा को किसी सुरतवन्त हस्ती की मेहर भरी नज़रों से जीवन–रौ को हासिल करना चाहिए। केवल किताबी ज्ञान या सिर्फ़ बुद्धि का विकास, आध्यात्मिक जागृति लाने में असफल रहता है। किताबों के ज़रिये सीखने से बुद्धि को ख़ुराक़ ज़रूर मिलती है, पर आत्मा को ख़ुराक़ नहीं मिलती। इसलिए हममें से हर एक आध्यात्म के विषय पर बहुत अच्छी तरह बोल सकता है, मगर असलियत से बिल्कुल परे है।

पड़ीअहि जेते बरस बरस पड़ीअहि जेते मास॥
पड़ीऐ जेती आरजा पड़ीअहि जेते सास॥
नानक लेखै इक गल होरु हउमै झखणा झाख॥

— आदि ग्रंथ (आसा की वार म.1, पृ.467)

जीवन में आत्मिक–रौ किसी पूर्ण पुरुष की जीवन–रौ से ही प्राप्त हो सकती है। आप ऐसी हस्ती को चाहें जिस नाम से पुकार सकते है, मगर ऐसी हस्ती का मिलना ज़रूरी है। हर एक धर्म ने ऐसी उच्चतर मदद के लिए ज़ोर दिया है।

हम अपनी सारी वस्तुपरक क्रियाकलापों में बाहरी सहायता की आवश्यकता से इन्कार नहीं करते। हम अक्सर किसी ऐसे की ओर देखते हैं, जो किसी सुनिश्चित विषय में माहिर हो। तो फिर हम एक ऐसी क्रियाकलाप में किसी की सहायता लेने में क्यों शर्म करें, जो कि विशुद्ध व्यक्तिपरक है—आध्यात्मिक मार्ग है— जो हमारी वस्तुपरक दृष्टि से छिपा हुआ है और पूर्णतया रहस्य से घिरा हुआ है?

हम उसके कितने आभारी होंगे, यदि कोई हस्ती हमें व्यक्तिगत संसार के अन्तरतम में ले जाय, स्थूल और सूक्ष्म तत्वों के हद से परे, और मायावी महासागर को सकुशल पार करा दे।

एक मुसलमान फ़कीर, मौलाना रूम साहिब कहते हैं :

मरदे हज्जी हमरही हाजी तलब,
ख्वाह हिन्दू ख्वाह तुर्क व ख्वाह अरब।

– मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 1, पृ.304)

अर्थात, यदि तुझे हज करने की इच्छा है, तो किसी हाजी को साथ ले ले। सफ़र की चिन्ताएँ और मुश्किलें आसान हो जायेंगी। इस बात की परवाह न कर कि वह हिन्दू है, तुर्क है या अरबी है।

हर तरफ़ से गिरावट आजकल का प्रधान लक्षण है। केवल धर्म–ग्रंथों के शाब्दिक वचनों ने, बिना उनके पृष्ठभूमि या अर्थ के, हम में से अधिकतर के जीवन में अमल की जगह ले ली है। अज्ञानता में डूबे, कई लोग समझते हैं कि वे सब कुछ जानते हैं और दूसरों का भार अपने कन्धों पर उठाने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार, अन्धा अन्धे का मार्गदर्शन कर रहा है– दोनों ही गड्ढे में गिरेंगे। संसार बनावट गुरुओं से भरा पड़ा है। ऐसे गुरुओं ने सारी दुनिया को अज्ञानता की गहरी खन्दक में गिरा रखा है। ऐसे अन्धे जीव, अपने अभिमान में निपुण, दिव्यता के लाबयान ख़ज़ाने देने का झूठा ढोंग करते हैं। वे एक भिखारी की तरह हैं, जो करोड़ों की दात देना चाहता हो। इसलिए किसी ऐसे की सहायता के बिना, जो परे की सच्चाई से सचमुच जुड़ा हुआ है, अध्यात्म के रास्ते पर तरक़्क़ी नहीं की जा सकती।

सत्गुरु ने कहा है :

दरवेसी को जाणसी विरला को दरवेसु॥
जे घरि घरि हंढै मंगदा धिगु जीवणु धिगु वेसु॥

– आदि ग्रंथ (बिहागड़े की वार म.4, पृ.550)

सत्गुरु फिर फ़रमाते हैं :

गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ।। ता कै मूलि न लगीऐ पाइ।।
घालि खाइ किछु हथहु देइ।। नानक राहु पछाणहि सेइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म.4, पृ.1245)

प्रभुस्वरूप हस्ती की आवश्यकता :

कहा जाता है कि यदि जो कोई बादशाहत को देखने का इच्छुक है, पहले वह किसी ऐसे की सोहबत अख़्तियार करे, जो कि बादशाह का प्यारा हो। जिस किसी को प्रभु के दर्शन की अभिलाषा है, वह किसी ऐसे की खोज करे, जो उसमें अभेद हुआ हो।

फिर,

मत को भरमि भुलै संसारि।।
गुर बिनु कोइ न उतरसि पारि।।

— आदि ग्रंथ (गोंड म.5, पृ.864)

मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं :

सोहबते सालेह तुरा सालेह कुनद।
सोहबते ताले तुरा ताले कुनद।

अर्थात, वह जो ख़ुदा की हाज़री पाने का इच्छुक है, उसे कहो कि वह वली अल्लाहों (संतों) की सोहबत में बैठे।

संत हमारे जीवन की दशा को शुरू से अन्त तक बदल सकने में समर्थ हैं और हमें परमात्मा की ओर ले जाने के साधन हैं। वे सबसे ऊँचे लोकों से वाणी प्रकट करते हैं और जो कुछ वे कहते हैं, वह सच ही होता है।

सत्गुरु फ़रमाते हैं :

संतन की सुणि साची साखी।।
सो बोलहि जो पेखहि आखी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म.5, पृ.894)

आपको उनके बाहरी आकार की ओर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं। उनके चरणों में भक्ति भाव सहित रहें। जो भी प्रभु से प्रेम करते हैं, उनके लिए हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और दूसरे समाजों से सम्बन्ध रखने वाले सब एक समान हैं। वे इंसानी देह में छिपे रूहानियत के सूर्य होते है। वे अनन्त गीत का संगीत होते हैं।

गुरु नानक साहिब इस सच्चाई को 'जप जी' की पाँचवी पौड़ी में बयान करते हैं। पूर्ण पुरुष ऐसे होते हैं, जो हमारे अन्तर शाश्वत 'शब्द' प्रकट करते है और हमें उसे सुनने के क़ाबिल बनाते हैं। ऐसे पुरुष में सम्पूर्ण ज्योतिर्मयता व पूर्णता प्रकट होती है। वे परमेश्वर—सत्स्वरूप हस्ती हैं, नहीं—नहीं, वे ख़ुद मालिक का एक केन्द्र हैं, जिनके ज़रिए प्रभु की सत्ता संसार में काम करती है।

गुरु कौन होता है?

संतों की इस्तलाह में जो 'शब्द' की कमाई करता है और उसकी तालीम देता है, वही 'गुरु' कहलाता है।

'गुरु' लफ़्ज़ सस्कृत का एक अक्षर है, जो 'गृ' धातु से निकला है, जिसका मतलब है, ध्वनि करना या बोलना। इसलिए गुरु शब्द का मतलब है कि जो 'शब्द' की कमाई करता है, जो उससे जुड़ा हुआ है और जो इंसान को अन्तर में उसे सुनने के क़ाबिल बनाता है। पलटू साहिब गुरु की तारीफ़ इस प्रकार करते हैं :

धुन आनै जो गगन की सो मेरा गुरुदेव॥

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1 (शब्द 5, पृ.6)

गुरु नानक साहिब भी इसी बारे में फ़रमाते हैं :

घर महि घरु दिखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥
पंच सबद धुनिकार धुनि तह बाजै सबदु नीसाणु॥

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म.1, पृ.1291)

स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज गुरु की तारीफ़ इस प्रकार करते हैं :

गुरु सोई जो शब्द सनेही। शब्द बिना दूसर नहिं सेई।
शब्द कमावे सो गुरु पूरा। उन चरनन की हो जा धूरा।

— सार बचन (बचन 13, शब्द 1)

कबीर साहिब भी यही फ़रमाते हैं :

साध हमारे सब बड़े अपनी अपनी ठौर।
सबद पारखू जो होए, सो माथे सिर मौर।

मगर ऐसा गुरु केवल प्रभु की अपार दया से ही मिलता है।

करमु होवै सतगुरू मिलाए॥

— आदि ग्रंथ (माझ म.3, पृ.109)

किसी सत्स्वरूप हस्ती की हिदायत के बिना, 'शब्द' के साथ जुड़ा नहीं जा सकता। और जब यह जुड़ना नसीब होता है, तो यह आत्मा को प्रभु की ओर ले जाता है, जहाँ से 'शब्द' का आग़ाज़ हुआ है। तभी हमारी सब कोशिशें पूरी तरह से सफल हो पाती हैं।

सबद मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ..27)

बड़भागों से, जब आपको ऐसी पावन हस्ती मिल जाए, तो दृढ़ता से अपने सारे मन और आत्मा से उस पर न्योछावर रहो, क्योंकि उसके ज़रिए आप जीवन का उद्देश्य— अपने आपको जानना और प्रभु को पाना, पूरा कर सकेंगे। आप उसकी जाति या रंग को न देखो। उससे 'शब्द' की विद्या को सीखो, और फिर अपने हृदय और आत्मा से 'शब्द' की साधना करो। गुरु 'शब्द' से एकमेक हैं। 'शब्द' उनमें है, और मानवता को समझाने के लिए वह देह धारण करता है। सचमुच वह 'शब्द—सदेह' है और हमारे बीच रहता है। अन्जील में आता है :

वह शब्द सदेह हुआ और हमारे बीच रहा।

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:1-3)

जब हम नश्वर शरीर को अपनी मर्ज़ी से छोड़ना सीख जाते हैं और जिस्म—जिस्मानियत से ऊपर आकर और सूक्ष्म संसार में

दाख़िल होते हैं, तो वहाँ सत्गुरु अपने नूरी स्वरूप में प्रकट होता है, जो हमें ऊपरी मंडलों में जाने में मदद करता है। जब तक प्रभु तक नहीं पहुँच जाते, वह हमें कभी नहीं छोड़ता। क्राइस्ट ने बड़े साफ लफ़्ज़ों में कहा है :

मैं तुमको कभी नहीं छोड़ूंगा, दुनिया की आख़िरत तक भी।

— पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 13:5)

सत्गुरु के शब्दों में :

बाणी गुरू गुरू है बाणी विचि बाणी अंमृतु सारे।।

— आदि ग्रंथ (नट म.4, पृ.982)

फिर :

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.1, पृ.634)

उलटा कूवा गगन में, तिस में जरै चिराग।।
तिस में जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।।..
निकसै एक आवाज़ चिराग की जोतिहिं माहीं।

— पलटू साहिब की बानी, भाग 1 (कुंडलिया 169, पृ.71)

अब सवाल यह उठता है : हम 'ध्वनि' (श्रुति) और 'ज्योति' (ज्योति) को कहाँ पा सकते हैं? यह नश्वर शरीर के दायरे से बहुत दूर, माया के परदों के परदों से ढका हुए हैं। यदि हम इसे पाना चाहते हों, तो हमें माया के मज़बूत गढ़ से ऊपर उठना ज़रूरी होगा। परन्तु वे आँखें और हैं, इन चमड़े की आँखों से नहीं, जिनसे कि इसे देखा और अनुभव किया जा सकता है। हमें सब धर्म—ग्रंथों के लिए पूरी इज़्ज़त और सम्मान है, क्योंकि हम उनमें 'शब्द— वाणी' की तालीम को पाते हैं। वास्तव में, स्याही, कागज़ और छपाई ही हमारे भक्ति के उद्देश्य को नहीं प्रकट करते, परन्तु इनके ज़रिये लफ़्ज़, 'शब्द—गुरु' विशिष्ट रूप से लिखा जाता है। इसी प्रकार, संत के स्थूल शरीर में,

हम शब्द–मुजस्सम को पूजते हैं, जो उनमें प्रकट है। और इस प्रकार, दोनों का ही मान एक दूसरे से जुदा नहीं किया जाता। यह एक ऐसे प्रीतम की तरह है, जो एक मकान में दरवाज़े बन्द करके बैठा रहता हो। हम झुकना चाहते हैं, पर हम ऐसा कैसे करें? हमें पक्का पता है कि यह प्रीतम ही है, जिसके आगे हम झुकना चाहते हैं, और न कि मकान के मिट्टी, गारे, चूने और मसाले के आगे, जिसमें कि प्रीतम रहता है। तो हम किसके आगे झुकते हैं? क्या हम मिट्टी की दीवारों के आगे झुकते हैं? कदापि नहीं, परन्तु दीवारों के पीछे मकान में रहने वाले के। लेकिन बाहर से देखने वालों को हम ऐसे लग सकता है कि हम मिट्टी की दीवारों के सम्मुख खड़े हों।

'शब्द' या वाणी ही सारी मनुष्य जाति का सच्चा गुरु है। यह सबके लिए एक समान है। यह पहले भी सच्चा गुरु था; अब भी यही सच्चा गुरु है, और आने वाले समय में भी हमेशा के लिए यह ही गुरु होगा। इसके सिवाय कोई अन्य गुरु मानव जाति के लिए नहीं है। जो इंसान 'शब्द–गुरु' को पा लेता है, जो उससे– उस 'शब्द' के साथ, जो उसके अन्तर में है– एकमेक हो जाता है, उसका भी सम्बन्ध हमारे साथ ऐसा ही होता है, जैसे ऊपर प्रियतम का बयान किया है। यह इंसान के भौतिक जिस्म के अन्तर स्वःप्रकाशित तेजोमयी में है, जो कि हमारा सच्चा गुरु है और जो प्रभु के साथ एकमेक है। जो साधु के रूप में प्रकट होता है, वह स्वयं प्रभु के सिवाय कोई अन्य नहीं, क्योंकि :

साध रूप अपना तनु धारिआ॥

— आदि ग्रंथ (मारू म.5, पृ.1005)

'गुरु ग्रंथ साहिब' का महान ख़ज़ाने, और ऐसे ही दूसरे धर्म ग्रंथ, ऐसी सत्स्वरूप हस्ती की महिमा गाते हैं, जो हमें प्रभु के साथ जोड़ सकता है और माया रूपी भवसागर से पार ले जा सकता है। इसके बारे में हम पढ़ते हैं :

साध की महिमा बेद न जानहि॥

जैता सुनहि तेता बखिआनहि॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.272)

बिन सबदै अंतरि आनेरा॥
न वसतु लहै न चूकै फेरा॥
सतिगुरु हथि कुंजी होरतु दरु खुलै नाही
गुरु पूरै भागि मिलावणिया॥

— आदि ग्रंथ (माझ म.1, पृ.124)

गुरु परमेसरु एको जाणु॥
जो तिसु भावै सो परवाणु॥

— आदि ग्रंथ (गोंड म.5, पृ.864)

सहजै नौ सभ लोचदी बिनु गुर पाइआ न जाइ॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.68)

गुरु सेवे सो ठाकुर जानै॥ दूखु मिटै सचु सबदि पछानै॥

— आदि ग्रंथ (आसा म.1, पृ.416)

गुर परसादी ठाकीऐ गिआन मती घरि आवै॥

— आदि ग्रंथ (आसा म.3, पृ.426)

धनु धनु सत पुरखु सतिगुरू हमारा
जितु मिलिऐ हम कउ साँति आई॥

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार, पृ.594)

जिसु जल निधि कारणि तुम जगि आए सो अंमृतु गुर पाही जीउ॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.1, पृ.598)

सतिगुरु सेवे ता सहज धुनि उपजै गति मति तद ही पाए॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.3, पृ.604)

सतिगुर सबदि उजारो दीपा॥

— आदि ग्रंथ (बिलावल म.5, पृ.821)

सतिगुरु सेवे ता सहज धुनि उपजै गति मति तद ही पाए।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.3, पृ.604)

करि किरपा सतिगुरु मिलिए।। मन मंदर महि दीपकु जलिए।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म.3, पृ.235)

जउ गुरदेउ त मिलै मुरारि।।

— आदि ग्रंथ (भैरव भगत नामदेव, पृ.1166)

गुर परसादी वेखु तू हरि मंदरु तेरै नालि।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म.3, पृ.1346)

सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि।।

— आदि ग्रंथ (जप जी 1, पृ.1)

अहिनिसि लाहा हरि नामु परापति गुरु दाता देवणहारु।।

— आदि ग्रंथ (मलार म.1, पृ.1256)

गुरु परमेसरु एको जाणु।। जो तिसु भावै सो परवाणु।।

— आदि ग्रंथ (गोंड म.5, पृ.864)

हरि मंदर महि नामु निधानु है ना बूझहि मुगध गवार।।
गुर परसादी चीन्हिआ हरि राखिया उरि धारि।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म.3, पृ.1346)

पैग़म्बर साहिब कहते हैं :

गुफ़्त पैग़म्बर किह् हक़ फ़रमूदा अस्त,
मन नगुंजम हेच दर बाला ओ पस्त।
दर ज़मीनो आसमानो अर्श नीज़,
मन नगुंजम ईं यक़ीं दान ऐ अज़ीज़।
दर दिले-मोमिन बगुंजम ऐ अजब,
गर मरा जूई दरां दिलहा तलब।

– मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 1, पृ.282)

अर्थात, ख़ुदा ने फ़रमाया कि ज़मीन, आसमान और ऊपरी मंडल मेरे समाने के लिए काफ़ी नहीं है। यह तुम पक्का जानो कि मैं इन सब में

नहीं समा सकता। ऐ मेरे प्यारे (अली), परन्तु एक अजब बात है कि मैं मोमिन (संत) के हृदय में समा जाता हूँ। अगर तुम मुझे पाना चाहते हो, तो मुझे उनमें देखो।

इसलिए सत्गुरु की भक्ति करना सीखो।

गुरु अमर दास जी फ़रमाते हैं :

हरि की सेवा सतगिुरु पूजहु करि किरपा आपि तरावै॥...
निरजीउ पूजहि मड़ा सरेवहि सभ बिरथी घाल गवावै॥

— आदि ग्रंथ (मलार म.4, पृ.1264)

केवल गुरु-परमेश्वर ही सच्चा मित्र होता है :

संसार के सभी रिश्ते–नाते मृत्यु के साथ छूट जाते हैं। सभी मित्र, रिश्तेदार, स्त्री और संतान बिछड़ जाते हैं। मगर कौन अगली दुनिया में हमारा साथ देता है? कोई भी तो नहीं। परन्तु 'शब्द'– गुरु–परमेश्वर में मुजस्सम 'शब्द' ही साथ देता है। वह आपके उत्तरदायित्वों में यहाँ और आगे भी मदद करता है। सत्स्वरूप हस्ती ही अन्त समय अपने शिष्यों को लेने आती है, जब कि अन्य सभी जवाब दे जाते हैं। एक सच्चे मित्र की तरह (जो कभी न छोड़े), वह सदा दुख और सुख में अपना हाथ बढ़ाता है।

सत्गुरु फ़रमाते हैं :

नानक कचड़िया सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ॥
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि॥

— आदि ग्रंथ (मारू की वार म.5, पृ.1102)

जे को जनम मरण ते डरै॥ साध जना की सरनी परै॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.266)

जब कोई अपने आप को सत्गुरु की रज़ा पर छोड़ देता है और सत्गुरु की दया–मेहर में छोड़ देता है, तो सत्गुरु उसके भीतर दिव्यता को जगा देते हैं। सत्गुरु शिष्य को, जिसे वे एक बार अपने दायरे में ले लेते हैं, कभी नहीं छोड़ते, जब तक कि उसे परमात्मा, जिसका

प्रतिरूप वे धरती पर हैं, की गोद में पहुँचा नहीं देते। वे अपने शिष्य से आमने–सामने बात करते हैं और ज़रूरत के समय अपनी सलाह देते हैं। वह शिष्य को प्रभु के रूप रूप में ढ़ालते हैं और उसे दिव्य चेतनता का जीता–जागता मन्दिर बना देते हैं।

आदि मधि जो अंति निबाहै।।
सो साजनु मेरा मनु चाहै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म.5, पृ.240)

दामने-ओ गीर ए यारे दलेर,
को मुनज़्ज़ा बाशद अज़् बाला ओ जे़र।
बा तू बाशद दर मकानो-ला-मकान,
चूँ बिमानी अज़् सरा ओ अज़् दुकान।

— मौलाना रूमी, मसनवी (दफ़्तर 3, पृ.45)

अर्थात, केसी ऐसे का पल्ला पकड़ो, जो इस स्थूल संसार और ऊपर के आत्मिक मंडलों का जानकार हो। जब तुम इस संसार में रहो, जंगलों, पहाड़ों, बियाबानों और सुख–दुख में वह तुम्हारे साथ रहे, और जब तुम देह छोड़कर– चाहे जीवित मरकर और चाहे देह छोड़ने के बाद– सूक्ष्म, कारण और उनसे पार निर्मल–चेतन देशों में पहुँचो, तो वहाँ भी वह तुम्हारे साथ रहे।

शिष्य या सिक्ख में, अपने मुर्शिद से दिल से दिल को राह बनाने के लिए के लिए तीन चीज़ें होनी चाहियें। उसे न केवल अपना तन, मन और धन अर्पण करना चाहिए, बल्कि उसे अपनी यह ज़िंदगी भी सत्गुरु के चरणों मे अर्पण करनी चाहिए। ऐसा इसलिए नहीं कि सत्गुरु को अपने शिष्य से बदले में कोई पुरस्कार लेने का लालच है, परन्तु इसलिए कि शिष्य सब कुछ अर्पित करे, जिसमें उसका इस जीवन में लगाव है। सत्गुरु इनमें से एक कण भी नहीं स्वीकारता, परन्तु प्रसाद के तौर पर सब कुछ वापिस कर देता है। वह शिष्य को हिदायत करता है कि अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग करके अपने आप को अपवित्र न करे, बल्कि इनको अपने मनुष्य–भाइयों, ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों, बीमारों और कमज़ोरों की भलाई के लिए बरते, ताकि वह अपने इर्द–गिर्द सुव्यवस्थित विकास करने में मददगार हो सके।

शिष्य अपने सत्गुरु के सन्मुख आकर यदि अपना सब कुछ उनके चरणों में अर्पण करे, तो भी सत्गुरु उसमें से कुछ भी स्वीकार नहीं करेगा। इस प्रकार, वह सब कुछ छोड़ कर सत्गुरु की दया–मेहर प्राप्त करने और अपने आपको जानने के लिए तत्पर हो जायेगा। उसे एक रबाब की भाँति, जिसको छेड़ कर पवित्र 'नाम' की स्वरलहरियाँ बज सकें, अपने आपको सत्गुरु का पात्र बनाना है। सभी सामाजिक सम्बन्ध, सभी संसारी पदार्थों को मोह, सभी मान–बड़ाई की हवस, सभी शारीरिक सुख, सभी बुरे ख़्याल जिनकी लहरें मन में उठती है, इन सभी को सत्गुरु के समक्ष रखे, ताकि सत्गुरु उसके माध्यम से अपने 'हुक़्म' का संचार कर सकें।

सच्चा शिष्यत्व (सिक्खी) सत्गुरु की अटल भक्ति, उनकी रज़ा पर चलने और उनकी दया से ही प्राप्त होता है। इसलिए यह सत्गुरु के स्वरूप के दर्शन मात्र करने से नहीं बनता, बल्कि उनके हुक़्म (दिव्य शब्द) से अपने आपको जोड़ने से ही प्राप्त होता है। पूर्ण रूप से आत्म—समर्पण करने से, मन की बकबक उठा कर फेंक दी जाती है, और तब कोई लालसाएँ और इच्छाएँ नहीं रह जातीं। जिस्म—जिस्मानियत के जीवन की उपद्रवी हलचल की जगह, शान्ति, स्थिरता और सच्चा त्याग स्थान ले लेता है। ऐसी शान्त घड़ियों में ही आध्यात्मिक चेतनता पनपने लगती है।

गुरु और शिष्य के बीच रिश्ते की डोरियाँ संसार में सबसे मज़बूत डोरियाँ है। मृत्यु भी इन्हें अलग नहीं कर सकती, क्योंकि उन्हें स्वयं परमात्मा और उनकी सर्वशक्तिमान इच्छा ने बांधा है।

भइओ क्रिपालु साधसंगु पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सूही असटपदीआ म.5, पृ.759)

सत्गुरु शिष्य के साथ हमेशा रहते हैं, चाहे वह कहीं भी हो। मौत और दूरी सत्गुरु और शिष्य के रिश्ते में कोई महत्व नहीं रखते। वे अब भी उसके साथ हैं, और आगे भी सदा रहेंगे।

सत्गुरु ध्रुव तारे की तरह, सभी रूहानी प्रयासों में रहनुमाई करते हैं। सत्गुरु अपने शिष्य को सही मार्ग पर हमेशा दृढ़ रखने, और यदि कोई रुकावट आ जाए, तो भी उसे मार्ग पर लौटाने के लिए, बाहर और अन्तर में, अपनी हिदायत और हर मुनासिब मदद देते रहते हैं। फ़ासले उसके रास्ते में रुकावट नहीं डालते। चाहे नज़दीकी हो या दूरी– तपते रेगिस्तान की रेत पर, बर्फ़ीली पहाड़ियों की चोटियों पर और उजाड़ जंगलों में भी सत्गुरु की दया–मेहर का हाथ शिष्य तक पहुँच जाता है। जैसे चुम्बक अपने दायरे में अद्भुत कशिश रखता है, उसी प्रकार, वह भी अपनी रूहानी धाराओं के द्वारा सत्गुरु परमार्थियों पर उनको स्वास्थ्यकारी और सुव्यवस्थित करने का उचित प्रयास करता रहता है।

गुर का सिखु वडभागी हे॥...
सतिगुरु सिख कउ जीअ नालि समारै॥

– आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.286)

मौलाना रूमी साहिब इसी बात को दोहराते हैं :

मर्द रा दसत दर अज़् आमाद यक़ीन
बर गजशत अज़् आसमाने हफ़्तमीन।

अर्थात, मुर्शिद का हाथ ख़ुदा का हाथ है; यह इतना लम्बा और ऊँचा है कि सात आसमानों के पार पहुँचता है।

गुरु अपने शिष्य से सभी मंडलों पर आमने–सामने बात–चीत करता है और ज़रूरत पड़ने पर उसे मुनासिब हिदायत देता है।

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं :

गुरु मेरै संगि सदा है नाले॥ सिमरि सिमरि तिसु सदा सम्हाले॥

– आदि ग्रंथ (आसा म.5, पृ.394)

तूं मेरा राखा सभनी थाई ता भउ केहा काड़ा जीउ॥

– आदि ग्रंथ (माझ म.5, पृ.103)

❦

9. सत्स्वरूप हस्ती को कैसे पहचानें?

ऐसी महान हस्तियाँ, जो मानव जाति को मदद देने, आत्मा के उच्चतम स्त्रोत की ओर ले जाने के लिए मात लोक में आती हैं, उन्हें कैसे पहचाना जाये? जब भी वे आते हैं, वे आत्मदर्शी होते हैं और जिन्हें स्वयं आत्मदर्शन की शक्ति प्राप्त हो, वे ही उनको पहचान सकते हैं।

ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.273)

किन्तु, हर एक इंसान रूहानियत का माहिर नहीं है। संतों की रहनी और जीवनयापन के कुछ ख़ास लक्षण होते हैं। इन गुणों के अनुरूप, इंसान की बाहरी आँखें संतों को आम इंसानों से प्रथक् करने के योग्य हो सकती हैं।

सच्चे गुरु जगत–गुरु होते हैं, न कि किसी ख़ास समाज या क़ौम के। वे मानव जाति को आत्मा के दृष्टिकोण से देखते हैं और सब आत्मा–देहधारियों को एक–समान सम्बोधित करते हैं।

सच्चा गुरु अपनी तालीम की सर्वव्यापकता से जाना जाता है, क्योंकि उसका उपदेश सभी के लिए एक समान है। उसके साये में हर एक मज़हब के लोग, बिना किसी रंग और धर्म के मतभेद के, एक साथ मतभ्राता बन कर बैठ सकते हैं।

और फिर, सच्चा गुरु बाहरी आडम्बर और दिखावा पसन्द नहीं करता, बल्कि अपनी आजीविका स्वयं कमाता है और दूसरों का कभी मोहताज नहीं होता।

गुरु पीर सदाए मंगण जाइ।। ता कै मूलि न लगीऐ पाइ।।
घालि खाइ किछु हथहु देइ।। नानक राहु पछाणहि सेइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म.4, पृ.1245)

संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिआरु॥

— आदि ग्रंथ (सूही म.3, पृ.756)

गुर के चरण कमल मन धिआइ॥
दूखु दरदु इसु तन ते जाइ॥

— आदि ग्रंथ (सूही म.5, पृ.741)

जब कभी किसी को खुले मन से सच्चे गुरु की संगत में बैठने का मौक़ा नसीब होता है, वह अपने आप को दिलासा देने वाली लहरों से घिरा पाता है और उनमें अपने को ऊपर उठातीं हिलोर खाता महसूस करता है। उसके व्यक्तिगत प्रभामंडल का अपना असर अद्‌भुत है। उनके वचन, जो अथाह आध्यात्मिकता से भरपूर होते हें, वे सुनने वालों के हृदयों की गहराइयों तक पहुँचते हैं और कभी भी बे–असर नहीं होते।

सत्स्वरूप हस्तियाँ सदा विश्वास से उपजे अधिकार सहित बोलती हैं, क्योंकि उन्हें हर एक चीज़ का निजी और पूर्ण ज्ञान होता है, जो कि आदि स्त्रोत और सार्वभौमिक उपादान कारण से सीधा जुड़ने से प्राप्त होता है।

वे आत्मा के आधार पर बोलते है, जहाँ बुद्धि–जनित दर्शन नहीं पहुँच पाता। सभी संतों ने इसी सच्चाई का बयान किया है। जितना अधिक आप साहित्यिक कार्यकलापों में उलझेंगे, उतना ही ज़्यादा किताबी ज्ञान की भूलभुलइयों में खो जायेंगे। उनके वचनों में जो सच्चाई होती है, वह समूचे बुद्धि–जनित दर्शन के लफ़्ज़ों में नहीं होती। हमें जितना हो सके, इन सबसे अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये, परन्तु उनमें अपनी राह नहीं खोने देना चाहिये, क्योंकि "बुद्धि–ज्ञान मददगार होता है, और बुद्धि–ज्ञान रुकावट भी है।"

सच्चा गुरु वह है, जो 'जीवन के जल'— सत्य— को आप भी पीता है और उसे दूसरों को भी पिलाता है। वह जिज्ञासुओं की अन्तरी आँख खोलने में समर्थ है, ताकि वे परमात्मा की ज्योति को देख सकें और उनके कानों के अन्तर के द्वार खोलता है, ताकि वे परमात्मा की ध्वनि— 'शब्द' को सुन सकें, जो कि सारी रचना में गूंज रही है।

परदा दूरि करै आँखिन को, निज दरसन दिखलावै॥

— कबीर साहिब की शब्दावली, भाग 2 (सतगुरु महिमा, शब्द 2, पृ.18)

फिर,

घर महि घरु दिखाइ देइ सो सतिगुरु पुरखु सुजाणु॥

— आदि ग्रंथ (मलार की वार म.1, पृ.1290)

साध की महिमा बेद न जानहि॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.272)

साधों की महिमा लाबयान है। इसीलिए, प्राकृतया, संत निजी अनुभव पर ज़ोर देते हैं। वे सब धर्मों के महापुरुषों के वचनों के आधार पर उनका सार और केन्द्रीय अभिप्राय समझाते हैं। सत्स्वरूप हस्तियाँ न तो बाहरी बनावटों को, और न ही भिन्न–भिन्न समाजों के लिबासों को देखती हैं, परन्तु जीवन के असली मूल्य को स्वीकार करती हैं। संत शिष्यों की वंशानुगत परम्परा में दख़ल नहीं देते, न ही उनके सामाजिक जीवन के रहन–सहन में। इसके विपरीत, वे प्रत्येक को इस बात पर ज़ोर देते हैं कि वे अपनी–अपनी समाजों में रहें और जीवन के रूहानी पहलू को सीखें और उस पर अमल करें। संत कोई नया समाज या नया धर्म नहीं बनाते। जो आन्तरिक आत्मिक तरक़्क़ी चाहते हैं, वे बिना अपने धर्म को छोड़े, जिसमें कि वे रहते हैं, ऐसी सत्स्वरूप हस्तियों से लाभ उठा सकते हैं। परन्तु संत वस्तुगत कार्यकलापों के द्वारा उच्चतर जीवन प्राप्त करने का विचारधारा पेश नहीं करते। वे इंसानी शरीर को परमात्मा का जीता–जागता मन्दिर मानते हैं और अपने शिष्यों को हिदायत देते हैं कि वे 'सुरत–शब्द योग' की कमाई से प्रभु को अन्तर में प्रकट करें।

हरि मंदरु एहु सरीरु है गिआनि रतनि परगटु होइ॥
मनमुख मूलु न जाणनी माणसि हरि मंदरु न होइ॥

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म.3, पृ.1346)

गुरु तुठै हरि प्रभु मेलिआ सभ किलविख कटि विकार॥

— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक म.3, पृ.1416)

फिर,

बाहरि मूलि न खोजीऐ घर माहि बिधाता॥
मनमुख हरि मंदर की सार न जाणनी तिनी जनमु गवाता॥

— आदि ग्रंथ (रामकली की वार म.3, पृ.953)

सत्स्वरूप हस्तियाँ संतों की संगत के सिवाय तीर्थ–स्थानों को कोई महत्व नहीं देती। वे हमारा ध्यान उन संतों की ओर दिलाते हैं, जिन्होंने इन स्थानों पर अपने चरण रखे, जिससे कि उन्हें अब तीर्थ–स्थान माना जाता है।

संतों का मिलाप और उनकी संगत सबसे बड़ा तीर्थ है। संत का दर्शन अड़सठ तीर्थों के समान है।

संत जना मिलु संगती गुरुमुखि तीरथु होइ॥
अठसठि तीरथ मजना गुर दरसु परापति होइ॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.1, पृ.597)

संत 'शब्द–पवित्र नाम' के साथ जुड़ने के सिवाय, पूजा की कोई अन्य विधि या किसी कर्मकांड नहीं बताते। वे परमात्मा की पूजा इंसान के हृदय रूपी मन्दिर में करना सिखाते हैं। यही सचमुच इस सांसारिक जीवन में परमानन्द देने वाली सर्वव्यापक आत्मिक ध्वनि–धारा का सच्चा अनुभव है।

हरि मंदर महि नामु निधानु है न बूझहि मुगध गवार॥

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म.3, पृ.1346)

पवित पावन से जन साचे एक सबदि लिव लाई॥
बिन नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई॥

— आदि ग्रंथ (रामकली म.3, पृ.910)

आत्मिक तरक़्क़ी के रास्ते पर दूसरा साधन सत्संग या सत्संगत है, क्योंकि इससे उत्थान का आभास होता है। जब संत सत्संग करते हैं, तो सम्पूर्ण वायुमंडल उनकी रूहानी–रौ से भरपूर हो जाता है, और जो भी सत्संग में आते हैं उससे अत्यधिक लाभ उठा पाते हैं। अमली तौर पर, यह एक प्रकार का विद्यालय है, जहाँ अभ्यासियों की दोनों तरह से– विचार तथा वचन द्वारा मदद की जाती है। यहाँ सम्पूर्ण रहस्य, जिसका सम्बन्ध 'शब्द' से है, का स्पष्टिकरण किया जाता है और परमार्थियों को इसे उनके लिये आदि–अन्त के रूप में समझाया जाता है।

सतसंगति कैसी जाणीऐ।। जिथै एको नामु वखाणीऐ।।

– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.72)

यहाँ पर, भिन्न–भिन्न मतों के दर्शन के किताबी ज्ञान के सिद्धान्तों के पक्ष का समर्थन नहीं किया जा रहा है। यहाँ सिर्फ़ भक्ति–भाव से जीवन की रहनी ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। आत्मा, जो उस प्रभु में जाग उठी है और हर समय उसका अनुभव कर रही है, सत्संग में केन्द्रीय सक्रिय हस्ती है। प्रभु के नशे में ऐसी मस्त हस्तियाँ अपनी दया–दृष्टि से अभ्यासियों की छिपी हुई आत्मिक चेतनता को केवल जाग्रत ही नहीं करतीं, परन्तु धीरे–धीरे उन्हें पूर्ण तौर से कार्यशील करती हैं। उनकी आँखें जीवन–रौ से भरपूर हैं, और उनके जीवन के महान स्त्रोत से जुड़े होने के कारण, वे जीवन–रौ की किरणें अपने पास आने वालों पर बरसाती हैं। उनकी दया उंडेलती दृष्टि शिष्यों को दिव्य 'संगीत– शब्द,' जो कि उन में गूँज रहा है, को पकड़ने के क़ाबिल बनाती हैं। सत्संग में वे आध्यात्मिकता की दौलत और ख़ज़ाने सहजता से प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें दिव्य ध्येय के रास्ते पर, उपदेश और अभ्यास के द्वारा मदद दी जाती है। इस प्रकार सत्संग में परमार्थी प्रभु के नशे में मस्त भक्तों के निजी प्रभामंडल के चुम्बकीय प्रभाव को ग्रहण करते हैं, जिसके द्वारा वे उच्चतर जीवन के लिए तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना

प्रभाव का दायरा है, जिसमें आने वाले, सभी उसे ग्रहण करते हैं। यह निजी चुम्बकत्व का दायरा, उस हस्ती के व्यक्तित्व के सामर्थ्य के अनुसार, छोटा या बड़ा रहता है।

पावन सत्संग में जाने की आवश्यकता पर बहुत अधिक बल दिया गया है; यहाँ तक कि सत्संगत को स्वयं सत्स्वरूप हस्ती से भी अधिक मूल्यवान माना गया है। यह इस बात से स्पष्ट है कि इसमें सत्स्वरूप हस्ती के साथ–साथ प्रभु के रंग में रंगे अन्य भक्तजन भी शामिल होते हैं। सत्संग एक ऐसा स्थान है, जहाँ आने वाले लोगों की बाहरी प्रवृत्तियाँ और बुरी आदतें, सत्गुरु की मिकनातीसी शक्ति से, आसानी से सुधरने, ढलने और वश में आने लगती हैं। सत्गुरु, सत्संगत को ही सच्चा तीर्थ–स्थान बताते हैं, जहाँ अभ्यासी अपने उच्चतम दिव्य ध्येय– महाचेतन लोक– 'सचखंड' की ओर तरक़्क़ी करते हैं।

सची बैसक तिन्हा संगि जिन संगि जपीऐ नाउ।।
तिन संगि संगु न कीचई नानक जिना आपणा सुआउ।।

– आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म.5, पृ.520)

जहाँ स्वयं पूर्ण हस्ती न बैठी हो, सत्संग का लाभ नहीं उठाया जा सकता। सत्गुरु कहते हैं :

सतिगुर बाझहु संगति न होई।।
बिनु सबदे पारु न पाए कोई।।

– आदि ग्रंथ (मारू म.3, पृ.1068)

कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

साधू बिनु नाही दरवार।।

– आदि ग्रंथ (गोंड भगत कबीर, पृ.872)

सत्गुरु की ग़ैर–हाज़री में, जब शिष्य उसकी मीठी याद में बैठते हैं, वे सत्गुरु की रूहानी–रौ की आशीश प्राप्त करते हैं।

क्राइस्ट कहते हैं :

जहाँ दो या तीन मेरे नाम (सत्गुरु के नाम) पर इकट्ठे मिलकर बैठें, वहाँ मैं उनके बीच में होता हूँ।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 18:30)

तीसरा आवश्यक साधन, जिसे सच्चा सत्गुरु आत्म—उन्नति के लिए सिखाता है, वह है : सच्चा 'नाम', 'शब्द' या 'दिव्य संगीत'। पवित्र नाम के दो पहलू हैं : एक पहलू का बयान लफ़्ज़ों में होठों और ज़बान की मदद से बोला जा सकता है या क़लम के द्वारा लिखा जा सकता है— इसे 'वर्णनात्मक' कहते हैं। दूसरा पहलू बयान में नहीं आ सकता, क्योंकि उसे 'ध्वन्यात्मक' (धुनात्मक) कहा जाता है। वर्णनात्मक नाम का जप सुमिरन के लिए किया जाता है, और इसके चार तरीक़े हैं : (1) ज़बान के साथ, (2) कंठ में, (3) हृदय में, और (4) नाभि में। इन तरीक़ों को क्रमशः (1) बैखरी, (2) मध्यमा, (3) पश्यन्ति, और (4) परा कहा जाता है। किसी भी इन चार तरीक़ों से नाम का जाप अन्तःकरण को शुद्ध करता है और कई अलौकिक शक्तियाँ, जिनमें पूर्व—ज्ञान और परा—ज्ञान भी है, प्राप्त होती हैं (किन्तु इनका उपयोग निन्दनीय व वर्जित है)। परम सुख, नम्रता और 'शब्द' का प्रेम भी कुछ हद तक इस मार्ग पर प्राप्त होते हैं। क्योंकि ये तरीक़े मनुष्य के शरीर में निचले चक्रों से संबंध रखते हैं, इसलिए सच्चे परमार्थी को यह उपदेश दिया जाता है कि 'ख़्याल की ज़बान' से सुमिरन दोनों आँखों के पीछे, भ्रूमध्य ध्यान टिकाकर करे (जो कि छठा चक्र और पिंड या शरीर के छः चक्रों में सबसे ऊँचा है)। इस चक्र से ऊपर की ओर 'नाम' गूंज रहा है। यह आत्मा को मिकनातीसी शक्ति की भाँति खींचता है, और इसे निम्न स्थूल से उच्चतर कारण मंडलों में ले जाता है। आत्मिक मंडलों में प्रवेश केवल 'नाम' के साथ जुड़ने से ही सम्भव है।

धुनात्मक अपने आप में एक सच्चा पहलू है। मिसाल के तौर पर, घंटे की 'टन—टन' की, जो आवाज़ घंटे से निकलती है, उसे 'टन—टन' कह सकते हैं। परन्तु, इसे सही तरीक़े से अधिक लफ़्ज़ों में बयान नहीं किया जा सकता; फिर भी 'शब्द' या 'ध्वनि' सभी स्थूल शरीर के जीते—जागते

मन्दिरों में गूँजती है। यह ध्वनि व्यक्ति की आत्मा को उच्चतर चेतन मंडलों में ले जाने में समर्थ हैं, जहाँ से इसका आग़ाज़ हुआ है। यह मधुर स्वरलहरी अन्तर की दिव्य ज्योति में से निकलती है। सत्गुरु के वचनों में :

अंतरि जोति निरंतरि बाणी साचे साहिब सिउ लिव लाई॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.1, पृ.634)

इस आवाज़ को ख़ून आदि की हरक़त आदि की आवाज़ों से नहीं जोड़ा नहीं जाना चाहिये, जिन्हें सिर्फ़ कानों से सुना जाता है, क्योंकि इनका सम्बन्ध तत्वों से है।

'नाम' का यह पहलू, हालाँकि अकथनीय और अर्वणनीय है, तो भी पूर्णतया सच्चा और शाश्वत है। यह आत्मिक ध्वनि अति–श्रेष्ठ है, जिसका आग़ाज़ कुल मालिक से हुआ है और जो सारी रचना में रमी हुई है। इसका अभिप्राय सही लफ़्ज़ों में बयान नहीं हो सकता तथा न ही इसका बिल्कुल सही वर्णन किया जा सकता है। महापुरुष इसलिए इसे ऐसा कहकर बयान करते हैं :

बावन अछर लोक त्रै सभु कछु इन ही माहि॥
ऐ अखर खिरि जाहिगे ओइ अखर इन महि नाहि॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी भगत कबीर, पृ.340)

'शब्द' या 'पवित्र नाम' की दात केवल सत्गुरु से ही मिलती है। उसके बिना प्रभु को नहीं जाना जा सकता।

सचा सबदु सची है बाणी॥ गुरमुखि विरलै किनै पछाणी॥
सचै सबदि रते बैरागी आवणु जाणु रहाई हे॥

— आदि ग्रंथ (मारू म.3, पृ.1044)

कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह॥

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (नाम का अंग 1, पृ.83)

फिर,

सबदि मिलहि ता हरि मिलै सेवा पवै सभ थाइ॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.27)

बिन सबदै जगतु बरलिया कहणा कछू न जाइ॥
हरि रखे से उबरे सबदि रहे लिव लाइ॥

— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक म.3, पृ.1417)

बिनु सबदै पिरु न पाईऐ बिरथा जनमु गवाइ॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.31)

साहिबु मेरा सदा है दिसै सबदु कमाइ॥
ओहु अउहाणी कदे नाहि ना आवै ना जाइ॥
सदा सदा सो सेवीऐ जो सभ महि रहै समाइ॥
अवरु दूजा किउ सेवीऐ जंमै तै मरि जाइ॥

— आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म.3, पृ.509)

स्वामी शिवदयाल सिंह जी महाराज, 'शब्द' के बारे में बताते हैं :

धन्न धन्न धन्न मेरे प्यारे। क्या कहूँ महिमा सबद की॥
जो परचे है सबद से। सो जाने महिमा सबद की॥
छिन छिन रखिआ हो रही। क्या उपमा कहूँ सबद की॥
बिन सबद फिर भरमात्यिां। नहीं जानी गति मति सबद की॥
जिन गुर पाईया सबद का। और प्रीमि करी निज सबद की॥
बड़भागी वे जीव है। जो करें कमाई सबद की॥
बिना सबद मन बस नहीं। तुम सुरत करो अब सबद की॥
वे क्यों आये इस जगत में। जिन मिली न पून्जी सबद की॥
धुन घट में हर दम हो रही। क्यों सुने न वाणी सबद की॥
तूं बैठा अकेला ध्यान धर। तो मिले निशानी सबद की॥
तूज आलस निद्रा काहिली। तूं लगन लगा ले सबद की॥
पांच सबद घट में बजें। यह निरने कर ले सबद की॥
गुरु ज्ञान बताया सबद का। तूं हो जा ध्यानी सबद का॥
मैं सबद सबद बहुतक कहा। कोई न माने सबद की॥

जनम अकारथ खो दिया। जो चढ़े न घाटी सबद की।।
राधा स्वामी कह कह चुप हुए। बिन भाग न धारा सबद की।।

— सार बचन, पद्य (बचन 9, शब्द 1)

केवल 'शब्द' या 'नाम' के साथ जुड़ना ही सच्ची पूजा है। इसकी कमाई के बिना, मन से गहरे पापों की ओर रुझान जड़ से नहीं उखड़ सकता। जो भी इंसान मन के फैलाव की तेज़ भाग–दौड़ की शिकायत करता है, वह 'शब्द के राग' को नहीं सुन सकता। जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, अज्ञानता धीरे–धीरे बढ़ती जाती है, पूर्ण पुरुषों की बताई हुई उदात्त सच्चाइयाँ समझीं नहीं जातीं और उनका सही मतलब खो बैठा जाता है।

'गुरु ग्रंथ साहिब' में लफ़्ज़, 'गुरु–बाणी' बहुतायत से पाया जाता है। जहाँ कहीं भी उसमें 'शब्द' की व्याख्या मिलती है, इसका अर्थ यह लिया जाता है कि 'गुरु ग्रंथ साहिब' में लिखित रूप से पाया जाने वाला शबद। ऐसा, चेतन शब्द की धारा या शब्द जो कि सारी रचना में गूँज रहा है, की अज्ञानता के कारण है। आइये, स्वयं गुरु ग्रंथ साहिब की ओर मुड़ कर देखें कि इस विषय पर उसमें क्या कहा गया है। निम्न लिखित व्याख्या पूरी तरह रोशनी डालती है कि 'शब्द' लफ़्ज़ों के वर्णन से परे कोई चेतन वस्तु है।

हम सबदि मुए सबदि मारि जीवाले भाई सबदे ही मुकति पाई।।
सबदे मनु तनु निरमल होआ हरि वसिया मनि आई।।
सबदु गुर दाता जितु मनु राता हरि सिउ रहिआ समाई।।
सबदु न जाणहि से अंने बोले से कितु आए संसारा।।
हरि रसु न पाइआ बिरथा जनमु गवाइआ जंमहि वारो वारा।।
बिसटा के कीड़े बिसटा माहि समाणे मनमुख मुगध गुबारा।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.3, पृ.601)

फिर,

बाणी वजी चहु जुगी सचो सचु सुणाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.3, पृ.35)

धुनि महि धिआनु धिआन महि जानिआ
गुरमुखि अकथ कहानी।

— आदि ग्रंथ (रामकली म.1, पृ.879)

पूरे गुर की साची बाणी।
सुख मन अंतरि सहजि समाणी।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म.3, पृ.663)

गुरु की बाणी सभ माहि समाणी।।

— आदि ग्रंथ (मारू म.5, पृ.1075)

'अकथ कथा' (लाबयान गीत), 'धुन' (मधुर स्वरलहरी), 'अनहद वाणी' (अविरल संगीत), जिनका गुरु नानक साहिब ने 'गुरु ग्रंथ साहिब' में प्रयोग किया है, ये सभी पर्यायवाची शब्द, एक ही सिद्धांत का बोध कराते हैं, जैसा कि 'नाम', 'शब्द' या 'वाणी' है। 'शब्द' बुद्धि की हद से परे है और इसे तभी सुना जा सकता है, जब कोई भवों से ऊपर उठ सके। 'शब्द' की समझ सिर्फ़ आत्म–ज्ञान से प्राप्त होती है।

गिआनु धिआनु धुनि जाणीऐ अकथु कहावै सोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.59)

गुर की बाणी सभ माहि समाणी।। आपि सुणी तै आप वखाणी।।

— आदि ग्रंथ (मारू म.5, पृ.1075)

बाणी बिरलउ बीचारसी जे को गुरमुखि होइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली ओकार म.1, पृ.935)

अनहद बाणी पूंजी।। संतन हथि राखी कूंजी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म.5, पृ.893)

संत, अपने शिष्य को दीक्षा के समय, सच्चे 'नाम' (शब्द) के बारे में पूरी तरह से हिदायत देते हैं। यह वह है, जो 'पवित्र नाम' को उभारता है और इसे शिष्यों में प्रकट करता है। वह उन्हें दिखाता है कि रूहानियत का ख़ज़ाना स्वयं आपके अन्तर दबा पड़ा है और बताता है

कि कैसे उसके साथ जुड़ा जा सकता है (जैसे कि हम 'जप जी' की छटी पौड़ी में पढ़ते हैं।)

इहु सरीरु सभु धरमु है जिसु अंदरि सचे की विचि जोति॥
गुहज रतन विचि लुकि रहे कोई गुरमुखि सेवकु कढै खोति॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी की वार म.4, पृ.309)

इहु मनु देही सोधि तूं गुर सबदि वीचारि॥
नानक इसु देही विचि नामु निधानु है पाइऐ गुर कै हेति अपारि॥

— आदि ग्रंथ (आसा म.3, पृ.427)

'गुरु की वाणी' हम सब के अन्तर में समोई जा रही है। यह प्रभु से उत्पन्न होती है और वही इसे सुनने योग्य बनाता है। जो कोई इसके साथ जुड़ता है, उसका उद्धार हो जाता है और वह शाश्वत सतलोक को प्राप्त करता है। 'गुरु की वाणी' (शब्द) सुषुम्ना में सुनी जाती है, उससे जुड़ने से हम सहज (एकाग्रता) की अवस्था में पहुँच जाते हैं।

सत्गुरु के अनुसार, चार पदार्थ सदा का महत्व रखते हैं, जबकि अन्य सभी चीज़ें क्षय के घेर में हैं और समय के साथ नष्ट हो जाती हैं। वे हैं : नाम या वाणी; साधु (या सुरतवन्त), जो अपने आप को पिता (प्रभु) में और पिता को सत्गुरु में देखता है; 'शब्द'—मुजस्सम (गुरु) और परमात्मा (गोबिन्द)। जो भी इनके साथ रिश्ता क़ायम करता है, वह प्रलय की हद से बच कर निकल जाता है।

एको निहचल नाम धनु होरु धनु आवै जाइ॥
इस धन कउ तसकरु जोहि न सकई ना ओचका लै जाइ॥
इहु हरि धनु जीऐ सेती रवि रहिआ जीऐ नाले जाइ॥
पूरे गुर ते पाईऐ मनमुखि पलै न पाइ॥
धनु वापारी नानका जिन्हा नाम धनु खटिया आइ॥

— आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म.3, पृ.511)

सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोबिन्द सिंह जी सिक्ख मर्यादा को एक स्थाई नींव पर छोड़ गये हैं। उन्होंने हमें 'गुरु ग्रंथ साहिब' के

रहस्यवादी स्वरूप में एक मानक मार्गदर्शक सिद्धांत दिया है, ताकि हम अज्ञानता के कारण रेंगती इंसानी त्रुटियों से बच सकें। हिन्दूओं, मुसलमानों, ब्राह्मणों और अन्य, लगभग सभी समाजों के संतों की रचनायें– पवित्र ग्रंथ में बराबर स्थान पाती हैं। इससे यह पता चलता है कि धर्माचार्यों का, बावजूद अपने पारस्परिक जातीय अन्तर के, इस रूहानियत के ज़ियाफ़तख़ाने (ख़ज़ाने) में डुबकी लगाने के लिए स्वागत था। उदाहरण के तौर पर, गुरु नानक साहिब के साथ भाई बाला और भाई मर्दाना– एक हिन्दू, तो दूसरा मुसलमान– उनकी दाएँ और बाएँ, एशिया भर में उनकी यात्राओं में जिगरी साथी रहे। सारी मनुष्य जाति का, क़ौम या रंग के भेद–भाव के बिना, उनके बताये हुए आध्यात्मिक मार्ग पर चलने के लिये स्वागत है।

गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज ने स्पष्ट रूप में 'दसम ग्रंथ' में 'शब्द' (Word) द्वारा प्रभु को जाने का मार्ग प्रकट किया है। इसी प्रासंग में, उन्होंने संत्संगत या पवित्र संगत, जो 'पाँच प्यारों' (या परमात्मा के प्यारे) की बनी हो, उसको 'ख़ालसा'– पवित्र कहा है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि ख़ालसा वह है, जिसके अंतर पूर्ण ज्योति का विकास हो और अपने आपको उनमें, समय–समयान्तर, हाज़िर रहने का वचन दिया है। उनके अपने वचनों में यह आता है :

जागत जोति जपै निस बासुर; एकु बिना, मनि नैक न आनै।।
पूरन प्रेम प्रतीत सजै; ब्रत गोर मड़्ही मठ भूल न मानै।।
तीरथ दान दइआ तप संजम; एकु बिना नहि एक पछानै।।
पूरन जोति जगै घट मै; तब खालस ताहि न खालस जानै।।

– दसम ग्रंथ (33 सवैये 1, पृ.712)

खालसा मेरो रूप है खास। खालसा में हौं करौं निवास।

– सर्बलोह ग्रंथ (523)

सत्गुरु ने सिक्खों को केवल ऐसे ख़ालसों या पवित्र हस्तियों से ही दीक्षित होने का आदेश दिया है, जिसे 'पाहुल' या 'अमृत' कह कर बयान किया है। उन्होंने कहा :

जो भी पाँच प्यारों से पाहुल किए बिना लम्बे बाल रखता है और केवल बाहरी लिबास को पहनता है, वह सिक्खों में बड़ा अज्ञानी है।

ख़ालसे साधु होते हैं, जिनकी महिमा 'गुरु ग्रंथ साहिब' में विस्तार से कही गयी है। गुरु नानक साहिब 'शब्द–मुजस्सम' थे। उन्होंने अपना चोला बदला और गुरु अंगद साहिब के रूप में आये और फिर उन्होंने अपने आपको गुरु अमर दास जी के रूप में बदला, वे फिर गुरु राम दास साहिब के रूप में प्रकट हुए और फिर गुरु अर्जन साहिब में रूपान्तरित हुए। शब्द–मुजस्सम ने लगातार इसी तरह अदल–बदल कर सिक्खों के दसवें गुरु, गुरु गोबिंद सिंह जी का रूप धारण किया, जिन्होंने बड़े साफ़ लफ़्ज़ों में फ़रमाया कि वे ख़ालसा या पवित्र हस्तियों में हर काल में रहेंगे। यह सच है कि सभी संतों ने वचन दिया है कि वे शब्द रूप में सदा रहेंगे। 'ख़ालसे' इसीलिए 'शब्द–मुजस्सम' हैं– शब्द उनमें है और वे शब्द में हैं। इस प्रकार, गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज ने सिक्ख मर्यादा में धर्म की त्रिपुटी (Trinity) की अटल नींव रखी।

10. धर्म में त्रिपुटी

1. ‘शब्द’ या ‘नाम’,

2. सत्संग या पवित्र धार्मिक सभा,

3. दीक्षा के लिए ख़ालसाओं की सभा या ख़ालसाओं के चरणों में हिदायत के लिए जाना, ‘गुरु ग्रंथ साहिब’ के वचनों को दृढ़ता से मानना– जोकि एक सैद्धांतिक मार्गदर्शक है।

आगे चलकर, गुरु नानक साहिब आध्यात्मिक रास्ते पर बढ़ने के लिए हमें प्रारम्भिक क़दम बताते हैं। ये क़दम ‘जप जी’ की 28वीं और 29वीं पौड़ी में लिखे गए हैं। रूहानी खोज में अभ्यासी के लिए ज़रूरी गुण पौड़ी 38 में दिए गये हैं। ‘जप जी’ के आख़िर में पाँच आध्यात्मिक मंडलों का भी वर्णन है, जिनसे गुज़र कर यात्री—आत्मा परमात्मा तक पहुँचने के रास्ते को पार करती है।

हमारा अपना आत्म—अनुभव की गवाही देगा कि जैसा कि ‘जप जी’ में गुरु नानक साहिब ने बताया है– धर्म का इस प्रकार का दृष्टिकोण ही एक सही क़दम है। उसे प्राप्त करने के लिए हमें मौत तक का इंतज़ार करने की आवश्यकता नहीं है। पूर्ण—पुरुष ऋण पर दिए गए वायदों पर विश्वास नहीं करते। यदि इंसान शरीर में रहते हुए ही प्रभु को नहीं देख पाता, तो मौत के बाद जीवन की पूर्णता मिलने पर कौन विश्वास करेगा?

जीवत राम न भयो प्रकासा।
भणत नामदेव मूवा कैसी आसा।।

— संत नामदेव, हिंदी पदावली (43)

अपने आप के अनुभव की अमली तालीम ही गुरु नानक साहिब के बताए हुए रास्ते को साबित कर सकती है। शान्ति और परमानन्द मन पर क़ाबू पाने से प्रारम्भ होते हैं। समय और अभ्यास की प्रगति के साथ–साथ मधुर स्वरलहरियाँ मानव–देह रूपी जीते जागते मन्दिर में गूंजने लगती हैं और स्वार्गिक ज्योति की दुनिया दमकने लगती है। अन्ततः, मनुष्य उस 'ज्योतिर्मय आत्मा' के समक्ष पहुँच जाता है, जो कि समस्त प्रकाश से सुसज्जित है। और तब पूरी सृष्टि प्रभु से ओतप्रोत होती प्रतीत होने लगती है और संसार भर में कोई चीज़ नहीं होती, जो 'शब्द' के सिवाय होती हो।

सत्गुरु चाहते हैं कि हम में से प्रत्येक क्षणभगुंर आकारों व आकृतियों को चीर कर, कुदरत से कुदरत के मालिक की ओर बढ़ पायें। वे हमें ताक़ीद करते हैं कि हम सृष्टि माता के अपने क्षणिक दिखावों तथा सौन्दर्यों द्वारा फैलाये गए बाहरी सांसारिक पदार्थों के लुभावने आकर्षणों तथा उजाड़ सम्मोहनों में लम्पट न हों। हम उन्हें केवल अन्तरतम में बसते और सृष्टि की प्रत्येक क्षणभगुंर रचना में व्यापते शाश्वत प्रभु की ओर मार्गदर्शन कराते दृष्टिपटल की भाँति ही समझें। आगे, वे चाहते हैं कि हम समस्त शक्तियों को एकत्रित करें और उनको सेवा में लगाएँ, ताकि हमारा शरीर इस सांसारिक यात्रा में 'दिव्य संगीत– शब्द' का एक जीता–जागता मन्दिर बन जाये। वे इसलिए फ़रमाते हैं :

प्राणी तू आइआ लाहा लैणि॥
लगा कितु कुफकड़े सभ मुकदी चली रैणि॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.5, पृ.43)

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ॥ राम नामु संतन घरि पाइआ॥

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म.5, पृ.283)

भई प्रापति मानुख देहुरीआ॥
गोबिंद मिलण की इह तेरी बरीआ॥

— आदि ग्रंथ (आसा म.5, पृ.12)

"अब ही या कभी नहीं," इस नारे को गुरु नानक साहिब ने पेश किया है। बाहरी जिस्म–जिस्मानियत के विषयों से लम्पटताई, धन–दौलत और सम्पत्ति का भड़कीला दिखावा, अत्यंत भोग–. विलास तथा ऐश्वर्य, इंद्रियों के भोगों–रसों में लम्पटताई और आधिक्य– ये सब चीज़ें एक अपरिष्कृत मन की स्थिरता में भंग डालती है। ये काँटे और रुकावटें हैं, जो शान्त मन, जो रूहानियत को प्रकट करने की सबसे अच्छी ज़मीन है, के सौन्दर्य को बिगाड़ती हैं। हर दिन, हर घंटा और हर मिनट जो गुज़र रहा है, हमें अधिकाधिक इंद्रियों के भोगों–रसों के सांसारिक चमकीले दृष्यप्रपंचों के बंधन की ओर लेता जा रहा है।

नदरी आवै तिसु सिउ मोहु॥
किउ मिलीऐ प्रभ अबिनासी तोहि॥

– आदि ग्रंथ (बिलावल म.5, पृ.801)

हमें थोड़ी देर के लिए मन को रोक कर देखना होगा कि हम कहाँ खड़े हैं और आध्यात्मिकता की किन ऊँचाइयों तक सच्चा सत्गुरु आकर हमें ले गया है।

11. जीवन का लक्ष्य

सत्गुरु हमारे सामने प्रभु, एक हक़ीक़त— एकंकार के साथ पूर्ण तौर पर अभेद होने का लक्ष्य रखते हैं। हम उस स्रोत से फिर से जुड़ सकते हैं, जहाँ से हम कभी उत्पन्न हुए थे और फिर से अपने पिता परमात्मा के घर का शाश्वत मुक़ाम प्राप्त कर सकते हैं, जहाँ की आनंद और शान्ति, भवसागर के दुखों से परे है।

सत्गुरु हमें उपदेश देते हैं कि हम अपनी छोटी हंगता— 'मैं' को छोड़कर, अपने शरीर के जीते—जागते मंदिरों में उस प्रभु का अपनी आत्माओं में अनुभव करें और उसमें जाग उठें। परमात्मा की बादशाहत हमारे अंतर में है। हमें पहचानना है कि अंतरीय इंसान प्रभु की ही प्रतिकृति है, भौतिक शरीर हरि का मंदिर है तथा मनुष्य का शरीर 'पवित्र आत्मा' का डेरा है, जिसमें प्रभु अपने आपको प्रकट करता है। इन जीते—जागते मंदिरों में हमें अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़ना है और उसके अधिक सम्पर्क में रहना है।

हरि मंदरु एहु सरीरु है गिआनि रतनि परगटु होइ॥
मनमुख मूलु न जाणनी माणसि हरि मंदरु न होइ॥

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म.3, पृ.1346)

हरि मंदरु हरि साजिआ हरि वसै जिसु नालि॥
गुरमती हरि पाइआ माइआ मोह परजालि॥

— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक म.3, पृ.1418)

गुरु नानक साहिब के अनुसार, सारी सृष्टि ही एक विशाल 'हरि का मन्दिर' है, जिसमें वह (प्रभु) रमा हुआ है। हमें प्रभु के श्वासों की बाँसुरी बनना होगा।

हरिमंदरु एहु जगतु है गुर बिनु घोरंधार॥
दूजा भाउ करि पूजदे मनमुख अंध गवार॥

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म.3, पृ.1346)

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥

— आदि ग्रंथ (आसा की वार म.1, पृ.463)

इन लफ़्ज़ों के साथ, पाठकों से अब प्रार्थना की जाती है कि ध्यानपूर्वक 'जप जी' का अध्ययन करें, और साथ में परमात्मा से सच्चे हृदय से प्रार्थना करें कि वे हमें 'शब्द' के साथ जुड़ने की दया करें, ताकि हम उनसे एकमेक हो सकें।

— कृपाल सिंह

जप जी
हिन्दी अनुवाद और व्याख्या

'जप जी' का हिन्दी अनुवाद तथा व्याख्या

मूल मन्त्र के द्वारा, गुरु नानक साहिब परमात्मा की हस्ती को बयान करने का प्रयास करते हैं, यद्यपि वह लाबयान है। वे उनकी अकाल हस्ती, प्रमुखता, अकृत्रिम कर्ता और सब कुछ का उपादान कारण होने की व्याख्या करते हैं और इशारा देते हैं कि किन साधनों से उनके पास पहुँचा जा सकता है। जैसे—जैसे हम इसे पढ़ते जाते हैं, यह विषय अधिकाधिक विस्तृतता से खुलने लगता है, और अन्त में इसका निष्कर्ष सफ़ाई से जिस पौड़ी में होता है, वह अपनी गूढ़ता, सघनता व साहित्यिक उत्कृष्टता में प्रारम्भिक पौड़ी से मेल खाती है। इसकी प्रस्तावना जबकि परमात्मा के गुणों से सम्बद्ध है तथा मुक्ति के साधन की ओर संकेत करती है, जबकि इसका उपसंहार ख़ूबसूरती से प्रभु की सृष्टि के स्वरूप को सार—रूप में समझाता है, और मुक्तिप्राप्त आत्माओं के लिये एक विजयगीत से इसे समाप्त करता है।

'मूल मन्त्र'

१ॲ सतिनामु करता पुरखु निरभउ निरवैरु अकाल मूरति
अजूनि सैभं गुर प्रसादि॥

॥जपु॥

आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

एकंकार, एक हक़ीक़त, अव्यक्त— जो कि इज़हार में आई;
सदा अटल, वह है 'नाम' (चेतन धारा),
कर्ता पुरुष; सब कुछ में रमा हुआ है;
भय रहित; वैर रहित;

अकाल पुरुष; योनी-रहित और स्वःविद्यमान;
स्वयं में सम्पूर्ण।
उसके सच्चे दास, गुरु की कृपा के द्वारा,
उस एकंकार का अनुभव सम्भव है।
वह तब भी था, जब कुछ नहीं था;
वह युगों से पहले भी था;
वह अब भी है, ऐ नानक, और सदा ही रहेगा।

उपरोक्त मूल–मन्त्र गुरु नानक साहिब द्वारा दी गई शिक्षा का मूल सिद्धान्त है। परमात्मा को एक निष्कलंक, मायारहित सत्ता (निरंकार), इज़हार में आने वाली अव्यक्त हस्ती (एकंकार), शाश्वत सत्य, उससे उत्पन्न सभी आकारों में रम रही चेतन धारा, जो सारी रचना का भरण–पोषण कर रही है। वह अपनी की गई रचना से भिन्न नहीं है, बल्कि प्रत्येक आकार में बसी हुई है।

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु॥

– आदि ग्रंथ (आसा की वार म.1, पृ.463)

सब का कर्ता होने के कारण, उसका कोई सा'नी (बराबरी) नहीं है और इसलिये, उसे किसी का डर या किसी से ईर्ष्या नहीं है। फिर, वह निमित्त (causation) के परे है, उसका अस्तित्व वास्तविक है, पर जन्म–मरण के भीतर नहीं।

वह, जो आदि से मौजूद, वर्तमान में मौजूद और अन्त तक मौजूद है, वही एकमात्र पूजा का आराध्य है। उसे केवल पवित्र 'नाम' रूपी मानव की कृपा से ही पाया जा सकता है।

गुरु नानक साहिब परमात्मा से एकाकार कराने के अनुभव के लिए भिन्न–भिन्न मानवीय विचारों के मतों का सारांश देते हैं। वे उनकी उस महान सत्य को प्रत्यक्ष करने में असमर्थता के बारे में बताते हैं।

दर्शन, बुद्धिमत्ता, बाहरी रीति—रिवाज़, जैसे कि शरीर की सफ़ाई (जो मन के पापों की मैल को धो नहीं सकते), मौन धारण करना, व्रत आदि रखना आदि, ध्येय को प्राप्त कराने में असमर्थ हैं। प्रभु तक पहुँचने का केवल एक ही रास्ता है, और गुरु नानक साहिब कहते हैं, वह यह है कि परमात्मा के 'हुक्म' को स्वयं अपनी रज़ा बनाया जाये। उसका हुक्म पहले ही हमारी हस्ती का एक अंग है, मगर हम उससे बेख़बर हैं। यह किसी नई चीज़ के खोजने या बनाने का प्रश्न नहीं, परन्तु अपने आप को उससे, जो आगे से ही मौजूद है, जोड़ने का है।

पौड़ी 1

सोचै सोचि न होवई जे सोची लख वार॥
चुपै चुप न होवई जे लाइ रहा लिव तार॥
भुखिआ भुख न उतरी जे बंना पुरीआ भार॥
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि॥
किव सचिआरा होईऐ किव कूड़ै तुटै पालि॥
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि॥

तर्क के द्वारा कोई भी प्रभु को नहीं समझ सकता,
चाहे कोई युगों-युगों तक तर्क करता रहे;
कोई बाहरी चुप्पी धारण करने से आन्तरिक
शान्ति हासिल नहीं कर सकता,
चाहे कोई कितने ही युगों तक मौन धारण करके बैठा रहे;
कोई भी संसार के सभी पदार्थ प्राप्त करने पर भी
तृप्त नहीं हो सकता,
न ही मानसिक चतुराई से उस तक पहुँचा सकता।
किस प्रकार कोई सच्च को जान सकता है और
झूठ के ग़ुबार को भेद सकता है?
एक राह है, ऐ नानक- उसके हुक्म को मानना,
उसका हुक्म, जो पहले ही हमारी हस्ती में गढ़ा जा चुका है।

'हुक्म' या रज़ा, एक ऐसी चीज़ है, जिसे लफ़्जों से बयान नहीं किया जा सकता। यह सभी व्याख्याओं को निष्फल कर देता है। प्रत्येक आत्मा के लिये 'दिव्य हुक्म' की सही समझ मात्र साक्षात्कार होने से ही आती है। परन्तु, इसके बारे में कुछ हद तक समझाने के लिये सत्गुरु इंगित करते हैं कि प्रभु के हुक्म से निर्धारित विभिन्न पक्ष क्या-क्या हैं। इसके लिये, वे उस कसौटी के बारे बताने लगते हैं, जिसके द्वारा व्यक्ति उनको जान सके, जो मालिक के हुक्म से एक हो चुके हैं। 'दिव्य हुक्म' के बूझने का मतलब अहंकार (हौमें) का नाश होना है।

पौड़ी 2

हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।।
हुकमी होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई।।
हुकमी उतमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि।।[1]
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।।
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ।।
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ।।

सब आकार उसके हुक्म से ही बने;
पर उसका हुक्म लाबयान है।
उसके हुक्म से जड़ पदार्थ सचेत हो जाता है;
उसके हुक्म से महानता प्राप्त होती है;
उसके हुक्म से कुछ नेक और कुछ बद पैदा होते हैं।
उसके हुक्म से इंसानों के सुख और दुख प्राप्त होते हैं;
उसके हुक्म से (नेक) मोक्ष प्राप्त करते हैं;
उसके हुक्म से (पापी) जन्म-मरण के चक्र में
निरन्तर भटकते रहते हैं।

1. "जैसा कोई बीज बोता है, वैसा ही काटता है," यह एक आम कहावत है। एक अन्य स्थान पर गुरु नानक साहिब बड़ी ख़ूबसूरती के साथ फ़रमाते हैं : "उसके हुक्म की क़लम हमारे कर्मों के अनुसार ही चलती है।"

सब कुछ उसके हुक़्म के अन्दर अस्तित्व में है,
और कुछ भी हुक़्म के बाहर नहीं है।
जो उसके हुक़्म के साथ जुड़ जाता है,
ऐ नानक, वह अहंकार (हौमें) से पूर्णतया मुक्त हो जाता है।

एक महान गुरु होने के नाते, गुरु नानक साहिब, भिन्न—भिन्न धार्मिक—पुस्तकों को पढ़ने से भ्रमों, जो कई परमार्थियों के मन में जाग सकते हैं, का पूर्वानुमान रखते हैं। ये (धार्मिक—पुस्तकें) परमात्मा को हुक्म के बारे में सदा एक समान तथ्य नहीं बतातीं, परन्तु यहाँ शक़ और अविश्वास वाली कोई बात नहीं है क्योंकि वास्तव में, वे जिसका बयान करती हैं, वह प्रभु का हुक्म (जो कि अपने आप में लाबयान है) नहीं हो सकता, परन्तु यह उसकी विभिन्न गतिशीलतायें और प्रत्यक्ष रूप हैं। प्रभु का हुक्म उसकी रचना में रम कर उसका नियन्त्रण कर रहा है। परन्तु, यह इससे भी बढ़ कर कुछ और है, एक ऐसी वस्तु, जो आप में रचना के ऊपर और उससे परे है।

पौड़ी 3

गावै को ताणु होवै किसै ताणु।। गावै को दाति जाणै नीसाणु।।
गावै को गुण वडिआईआ चार।। गावै को विदिआ विखमु वीचारु।।
गावै को साजि करे तनु खेह।। गावै को जीअ लै फिरि देह।।
गावै को जापै दिसै दूरि।। गावै को वेखै हादरा हदूरि।।
कथना कथी न आवै तोटि।। कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि।।
देदा दे लैदे थकि पाहि।। जुगा जुगंतरि खाही खाहि।।
हुकमी हुकमु चलाए राहु।। नानक विगसै वेपरवाहु।।

कई हैं, जो उसकी महानता गाते हैं,
मगर उतनी शक्ति से, जितनी शक्ति उन्हें बख़्शी गई है।
अनेक उसकी दातों के गाते हैं, उनमें उसके निशान जान कर;

अनेक उसे अबोधगम्य मान कर गाते हैं;
अनेक उसे गाते हैं कि वह जड़ में
चेतनता फूंकता है, और चेतनता को
   पुनः जड़ में लौटा देता है :
सृजनकर्ता और संहारकर्ता, जीवन दाता
   और जीवन वापिस ले लेने वाला।
अनेक उसे गाते हैं कि वह नज़दीक से नज़दीक है,
और परे से परे भी।
उसका वर्णन अन्तहीन है।
अनगिनत लोगों ने उसे वर्णित करने का प्रयास किया है,
पर फिर भी वह वर्णनातीत है।
उसकी दातें प्राप्त करने वाले भले ही थक जायें,
परन्तु उसकी बख़्शिशें समाप्त नहीं होतीं;
युगों-युगों से इंसान उस पर संपोषित रहा है।
हाक़िम का हुक्म सृष्टि को निर्देशित कर रहा है;
परन्तु फिर भी, ऐ नानक, वह बेपरवाह
   तथा अचिन्त निवास करता है।

प्रभु का हुक्म अवर्णीय है और प्रश्न यह उत्पन्न होता है— कैसे उसके साथ हम एकमेक हों? गुरु नानक साहिब उत्तर देते हैं कि अपनी ओर से जो हम कर सकते हैं, वह यह है कि अमृत वेला (ब्रह्म–मुहूर्त) में हम ध्यान पर बैठें और उसके पवित्र 'नाम' से जुड़ें। इसमें कोई शक़ नहीं कि हमारे कर्म और हमारी मेहनत अवश्य मददगार साबित होते हैं, क्योंकि उनके द्वारा हमें मनुष्य जन्म मिलता है— परन्तु इनसे, गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं, हम मोक्ष हासिल नहीं कर सकते, जब तक उसकी दया की दात न मिले। 'जप जी' में, गुरु नानक साहिब बार–बार इस विरोधाभास को बयान करते हैं कि मोक्ष केवल मालिक

की दया से मुमकिन है; फिर भी, हमें इस मोक्ष के लिए प्रयास करते रहना ज़रूरी है।

पौड़ी 4

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु॥
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु॥
फेरि कि अगै रखीऐ जितु दिसै दरबारु॥
मुहौ कि बोलणु बोलीऐ जितु सुणि धरे पिआरु॥
अंम्रित वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु॥

प्रभु सच्चा है, सच्चा उसका 'नाम' है;
उसका प्रेम अपरम्पार वर्णित किया गया है।
व्यक्ति उससे दातें मांगते रहते हैं,
जिन्हें वह अनथक बख़्शता रहता है।
जब कि सब कुछ उसी का है;
भला क्या हम उसके चरणों में भेंट करे!
क्या हम उसका प्यार पाने हेतु कहें ?
प्रभात से पूर्व अमृत वेला में,
'दिव्य नाम' के साथ जुड़ो और उसकी महिमा गाओ।
हमारा जन्म हमारे कर्मों का फल है;
मगर मोक्ष-द्वार उसकी दया से ही मिलता है।
ऐ नानक, इस तरह जानो कि
वह सच्चा प्रभु सब में रमा हुआ है।

उसकी महिमा पर ध्यान करने के साथ-साथ, पवित्र 'नाम-दिव्य शब्द' के साथ जुड़ना 'एकंकार' का अनुभव करने का 'खुल

जा सिम–सिम' जैसा जादुई साधन है। 'शब्द' वह मूल पदार्थ तथा शक्ति है, जिससे सभी जीव बने हैं। उसकी मधुर स्वरलह. रियों के साथ जुड़ पाना एक ऐसी दात है, जो किसी ज़िन्दा–जाग्रत सत्गुरु से ही प्राप्त हो सकती है। किसी ऐसे की संगत में ही, प्रभु का पावन उभार और प्रेम मिलता है और अन्तर की आँख सभी वस्तुओं में प्रभु की हाज़िरी देखने के लिए खुल जाती है। गुरु नानक साहिब इसका संकेत 'जप जी' की प्रस्तावना में ही दे चुके है और अब, वे उस ऐसी आत्मा की महानता और महत्ता का वर्णन करते हैं। एक सच्चा गुरु केवल मनुष्य नहीं होता है, मगर वह प्रभु के साथ एकमेक है, यहाँ तक कि वह सभी देवी–देवताओं की शक्तियों से भरपूर है। वह सचमुच 'शब्द–सदेह' है। ऐसे सत्गुरु सदा प्रभु, जो सब चीज़ों का कर्ता है, का ध्यान करने और उसे कभी न भूलने का सबक़ अपने शिष्यों को सिखाते है।

पौड़ी 5

थापिआ न जाइ कीता न होइ॥
आपे आपि निरंजनु सोइ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु॥
नानक गावीऐ गुणी निधानु॥
गावीऐ सुणीऐ मनि रखीऐ भाउ॥
दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ॥
गुरमुखि[1] नादं गुरमुखि वेदं[2] गुरमुखिं रहिआ समाई॥
गुरु ईसरु गुरु गोरखु बरमा[3] गुरु पारबती माई॥[4]
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई॥
गुरा इक देहि बुझाई॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई॥

वह न तो स्थापित किया जा सकता है,
न ही उसका सृजन किया जा सकता है;

वह असीम है, अपन आप में परिपूर्ण।
जो भी उसको पूजते हैं, वे मान के भागी बनते है;
ऐ नानक, सदा उस गुण-निधान के गुणानुवाद गाओ।
हृदय में प्रेमाभक्ति के साथ उसको हम गायें
और 'शब्द' से जुड़ें;
क्योंकि इसी तरह सब दुख दूर होंगे और
हम निज-घर को सुखपूर्वक अग्रसर होंगे।
गुरुमुख (सत्गुरु) संगीत या शब्द-मुजस्सम है;
गुरुमुख वेद है, गुरुमुख ही धर्म-ग्रंथ है।
गुरु शंकर है, गुरु विष्णु है और गुरु ही ब्रह्मा है;
और उनकी अर्धांगिनयाँ- पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती भी।
गुरु की महानता, यदि जानी भी जाये,
तो भी उसका बयान नश्वर प्राणियों की वक्पटुता में नहीं है।
मेरे सत्गुरु ने मुझे एक बात जो समझाई है;
कि, वही एक, सब का दाता है;
काश! कि मैं उसे कभी न बिसारूँ।

इस पौड़ी में, गुरु नानक साहिब अधिक विस्तार से विरोधाभास के बारे में बताते हैं, जिसे कि पौड़ी 4 में अभी– अभी इसे लिया गया था।

1. 'जपु जी' में 'गुरमुख' लफ़्ज़ बरता गया है, जिसका मतलब है 'प्रभु का मुख' और गुरु जो शिष्य को परमात्मा के मार्ग पर ले जाता है।

2. गुरु आत्मिक ज्ञान, जो सब धर्म—ग्रन्थों का आधार है, का माहिर है।

3. गुरु हिन्दू त्रिवेणी की बुनियाद के सब देवताओं के गुण रखता है : ब्रह्मा, विष्णु और शंकर जो उत्पन्न करने, प्रतिपालन करने और संहार करने के असूलों की निशानियाँ हैं। ब्रह्मा की तरह, जो वेदों का रचने वाला, रूहानी ज्ञान प्रकट करता है और अपने शिष्यों को नया जन्म देता है— आत्मा का जन्म। विष्णु की तरह वह सम्भालता है और उन्हें सब ख़तरों से बचाता है, और शंकर महादेव की तरह गुरु उनके सब पापों के रुझान को नाश करता है।

4. इसी तरह देवियाँ : पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती—भक्ति, धन और विद्या की निशानियाँ हैं। गुरु इन सब गुणों का रूप है।

कुछेक ख़ास बाहरी कर्मकांडों के ज़रिए कोई मालिक के साथ नहीं मिल सकता, जैसे कि : धर्म–ग्रंथों का पठन, प्रार्थनाओं का उच्चारण, तीर्थ–यात्रायें करना, मौन धारण करना, व्रत और रात्रि जागरण, रीति–रिवाज़ों का करना। इन सबका सम्बन्ध अपरा–विद्या से है, जो कि उच्चतर जीवन के लिए शौक़ और भाव–भक्ति उत्पन्न करने के लिये ज़मीन की तैयारी कराते हैं। इनका भली भांति लाभ उठाया जा सकता है। मगर ये बाहरी कर्म मुक्ति नहीं दिला सकते। अपने आप में ये निरर्थक हैं। उसकी दया–मेहर की झलक ही मायने रखती है। यदि कोई इसे प्राप्त कर ले, वह सचमुच भाग्यशाली इंसान है। अगर मुक्ति केवल प्रभु के प्रेम पर निर्भर होती है, तो भी हमें आलस्य में नहीं रहना चाहिए। जड़ता का जीवन हमें कहीं भी नहीं पहुँचा सकता, और परमात्मा उनकी ही मदद करता है, जो स्वयं अपनी मदद करते हैं। इसमें शक़ नहीं कि मुक्ति सिर्फ़ उसकी दया से ही प्राप्त होती है, फिर भी, हमें अवश्य उसके योग्य बनना चाहिए। और उसके योग्य बनने का एकमात्र रास्ता यह है कि हम किसी सच्चे सत्गुरु के बताए हुए मार्ग पर चलें। उसके हुक्म को बूझकर, हम उसकी रज़ा को अपनी रज़ा बना सकते हैं।

---

1. कर्म : कार्य। यह भारतीय संस्कृति के अनुसार एक विशाल हिन्दू सिद्धांत है। यह विचार माना जाता है कि हमारे क्रियमान कर्मों से हमारा अगला जीवन बनता है, सिर्फ़ इस जीवन में ही नहीं बल्कि आने वाले जीवन में भी। भाग्य जैसी कोई चीज़ नहीं है। इंसान कार्य और परिणाम की ज़ंजीर के अनुसार कार्य करता है। हालांकि आध्यात्मिक मुक्ति बिना दया के सम्भव नहीं है, तो भी गुरु नानक साहिब फरमाते हैं कि हमें ज़रूर अपने इस जीवन या अगले जीवन के कर्मों या कार्यों से ऐसी दया का भागीदार बनना चाहिए।

2. गुरु : यह लफ़्ज़ जपुजी में बार–बार आता है और सचमुच इसका सब सिक्ख धर्म ग्रन्थों में आम तौर पर प्रयोग किया गया है। यह आध्यात्मिक गुरु के लिए बरता गया है और जब भी गुरु नानक साहिब इसका प्रयोग करते हैं, उनका मतलब किसी ऐसे इंसान से नहीं, जो आध्यात्मिक मार्गदर्शक कहलाता है, बल्कि उसके लिए है, जो आध्यात्मिक सफ़र में ऊँचे मंडलों पर पहुँचा हो, जो मालिक में अभेद हो और उसका मुख बना हो।

पौड़ी 6

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी।।
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई।।[1]
मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी।।
गुरा इक देहि बुझाई।।[2]
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई।।

यदि मैं उसे प्रसन्न कर भी सकूँ,
तो यह तीर्थयात्रा पर्याप्त है;
यदि नहीं, तो कुछ भी नहीं- न रीति-रिवाज़,
 न ही कोई प्रयास- कारगर हैं;
जिस किसी ओर मैं देखता हूँ, उसको ही सृष्टि में पाता हूँ,
बिना उसकी दया के, किसी ने मुक्ति को नहीं पाया—
 चाहे जैसे उसके कर्म हों।
आप अपने अन्तर लाबयान आध्यात्मिक ख़ज़ाने
 खोज सकते हैं;
यदि आप अपने गुरु की शिक्षा का अनुसरण करें।
मेरे गुरु ने मुझे एक बात समझाई है :
वह 'एक' सर्वस्व का स्वामी है;
काश! मैं कभी न उसे बिसारूँ।

यद्यपि ख़ास योगाभ्यासों के द्वारा कोई अपनी आयु बढ़ा सकता है तथा दैविक और क़रामाती शक्तियों (ऋद्धियों—सिद्धियों) का माहिर बन सकता है। मगर, गुरु नानक साहिब बताते हैं कि यह ज़रूरी नहीं कि इनसे परमात्मा की दया—मेहर हासिल हो, जिसके बग़ैर सब कुछ झूठा है। वास्तव में, आगे पौड़ी 29 में गुरु नानक साहिब विस्तार से वर्णन करते हैं कि ऐसी अलौकिक शक्तियाँ, परमात्मा के पूर्ण तौर से अनुभव करने के रास्ते में, अधिकतर रुकावट ही डालती हैं।

पौड़ी 7

जे जुग चारे[1] आरजा होर दसूणी होइ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ॥
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुछै के॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे॥

यदि कोई अपनी आयु चार युगों जितनी बढ़ा ले,
नहीं नहीं, इससे भी दस गुना अधिक कर ले;
यदि कोई रचना के समूचे नौ खंडों में भी जाना जाये;
यदि सभी कोई आदर से उसके पीछे-पीछे चलने लगें;
यदि प्रत्येक प्राणी उसकी महिमा आसमानों तक करे;
इतना, और इससे अधिक होने पर भी कोई फ़ायदा नहीं,
यदि परमात्मा की नज़र मेहरबानी से उसे नहीं देखती :
उसकी दया—दृष्टि के बिना,
वह कीड़ों में नीच से नीच कीड़ा गिना जायेगा;
और पापी भी उसे पापी ठहरायेंगे।
ऐ नानक, प्रभु गुणरहित जीवों को गुण प्रदान करता है,
और गुणवन्त जीवों को अधिक भरपूर करता है।
परन्तु कोई ऐसा नहीं है, जो उसे कुछ दे सके।

---

1. गुरु नानक साहिब यहाँ पर पुरातन भारतीय चार युगों या समय के चक्करों के सिद्धांत का प्रमाण दे रहे हैं, जो कि कुछ—कुछ पश्चिमी सुनहरी युग, चांदी युग, तांबे के युग और लोहे के युग के विश्वास जैसा है। गुरु नानक साहिब ऐसे पुरातन हिन्दू तालीम के समान विचारों और सिद्धांतों का बार—बार प्रयोग करते हैं; मगर वे उनके वैज्ञानिक सच्चाई के रूप में नहीं, बल्कि अक़्सर रूहानी कवि के नाते, जो संकेत और पौराणिक कथाएं जिनका मक़सद अपने निज घर पहुँचना है।

गुरु नानक साहिब, सातवीं पौड़ी के संक्षिप्त विषयान्तर के बाद, अध्यात्म के गूढ़ विषय को आगे बढ़ाते हैं। जैसा कि हमें पहले बताया गया है कि परमात्मा के साथ अभेद होना तभी सम्भव है, जबकि हम उसकी रज़ा को अपनी रज़ा बनायें। ऐसा तभी हो सकेगा, जब 'शब्द' के साथ जुड़ा जाएगा, जिसका भेद किसी ज़िन्दा सत्स्वरूप हस्ती से प्राप्त होता है। गुरु नानक साहिब अब ऐसे मिलाप का फल वर्णित करते हैं। इंसान बाहरी जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर उठता है और अन्तरीय सार्वभौमिक जागृति की अवस्था में आ जाता है। इंसान सच्चे महापुरुष की पदवी पा लेता है और रचना के भेद को जान जाता है।

कबीर साहिब भी इसी प्रकार का बयान करते हैं :

"जब आप इससे परे (जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर) जायेंगे, एक सूक्ष्म आवाज़ सुनाई देगी। इस आवाज़ को केवल 'ब्रह्मज्ञानी' ही सुन सकता है।"

इस अन्तरीय आवाज़ को, जोकि ध्यान की एकाग्रता के शुभ क्षणों में सुनी जाती है, अन्तःकरण या विवेक की आवाज़ से भ्रमित नहीं करना चाहिये, जैसा कि अक्सर किया जाता रहा है। हमारा अन्तःकरण हमारे पिछले कर्मों के संग्रह से अधिक कुछ नहीं है, जो हमारे मौजूदा कर्मों पर निर्णय देती है। इस प्रकार, यह एक व्यक्तिविशेष से दूसरे तक बदलती रहती है। परन्तु अन्तर की आवाज़ सर्वव्यापक होती है, एक ऐसी वस्तु जो कि बदलती नहीं, परन्तु सबके लिये सदैव एक जैसी होती है।

अगली तीन पौड़ियाँ, 9, 10, 11 'शब्द' के साथ जुड़ने के फल के विषयों पर विद्यमान हैं, जिससे सभी तरह की उपलब्धियाँ– वस्तुगत, मानसिक तथा आध्यात्मिक, प्राप्त करना सम्भव है, जो आख़िर में प्रभुता की ओर ले जाती हैं।

पौड़ी 8

सुणिऐ सिध[1] पीर[2] सुरि[3] नाथ[4]॥
सुणिऐ धरति धवल[5] आकास॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल॥
सुणिऐ पोहि न सकै कालु॥
नानक भगता सदा विगासु॥
सुणिऐ दूख पाप का नासु॥

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
सिद्ध, पीर, सुर और नाथ की पदवी प्राप्त कर सकता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति धरती,
थामने वाले बैल और आकाशों को जान सकता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति को धरती के द्वीप,
दिव्य लोक तथा पाताल प्रकट हो जाते हैं;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
मृत्यु के द्वार के पार बच कर निकल सकता है;
ऐ नानक, उसके भक्त शाश्वत आनन्द में प्रफुल्लित रहते हैं,
क्योंकि 'नाम' उनके सभी पापों और दुःखों का
नाश कर देता है।

पौड़ी 9

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु॥
सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु॥
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद॥

1. सिद्ध : वह इंसान, जिसको सिद्धियाँ मिली हो।
2. पीर : रूहानी मुसलमान या रूहानी गुरु।
3. सुर : देवते।
4. नाथ : योगी— योग विद्या में माहिर।
5. धौल : बैल, कथाओं में वर्णन किया हुआ है कि यह बैल पृथ्वी और आसमान को सहारा दे रहा है।

सुणीऐ सासत[6] सिमृति[7] वेद[8]।।
नानक भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
सराहने योग्य बन सकता है,
चाहे उसके पुरबले कर्म कैसे भी हों;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
जीवन के और निज के रहस्य प्रकट करने का
(योगियों की भाँति) दिव्य-चक्षु प्राप्त कर सकता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों के सही अर्थ समझ सकता है;
ऐ नानक, उसके भक्त शाश्वत आनन्द में प्रफुल्लित रहते हैं,
क्योंकि 'नाम' उनके सभी पापों और दुःखों का नाश कर
देता है।

पौड़ी 10

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु।।
सुणिऐ अठसठि[9] का इसनानु।।

---

6. शास्त्र : हिन्दुओं के सैद्धान्तिक ग्रन्थ।
7. स्मृतियाँ : हिन्दुओं के पुरातन ग्रन्थ।
8. वेद : इंसानी विचारों की पुरातन किताबें।
9.अड़सठ : साधारण तौर पर दोनों लफ़्ज़ों का मतलब 'आठ' और 'साठ' यानी अड़सठ है। गुरु नानक साहिब हिन्दू धर्म के विश्वास का दोबारा प्रयोग करते हैं कि अड़सठ तीर्थों पर स्नान से सब पाप कर्म धोये जाते है। (देखें सात पौड़ी के नीचे लिखे स्थान पर)।
10. सहज : यह लफ़्ज़ उस अवस्था को बताता है जब कि स्थूल, सूक्ष्म के कारन संसारों के उपद्रव (मुश्किलें), सब जादू डालने वाली शक्तियों से ऊपर उठकर महान जीवन के असूलों को अन्तर में देखते हैं।

सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु।। सुणिऐ लागै
सहजि[20] धिआनु।।
नानक भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
सत्य, सन्तोष और सच्चे ज्ञान का निवास बन जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
अड़सठ तीर्थों के स्नान का फल पा लेता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
विद्वानों का मान प्राप्त करता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
इंसान सहज अवस्था को प्राप्त करता है;
ऐ नानक, उसके भक्त शाश्वत आनन्द में प्रफुल्लित रहते हैं,
क्योंकि 'नाम' उनके सभी पापों और दुखों का नाश कर
देता है।

पौड़ी 11

सुणिऐ सरा गुणा के गाह।।
सुणीऐ सेख पीर पातिसाह।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु।।
सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।।
नानकु भगता सदा विगासु।।
सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
सभी गुणों का भंडार बन जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
शेख़, पीर और सच्चा आध्यात्मिक बादशाह बन जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति

आत्मिक रूप से अन्धे अपना मुक्ति का मार्ग प्राप्त कर लेते हैं;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
माया रूपी अथाह सागर से पार उतर जाता है;
ऐ नानक, उसके भक्त शाश्वत आनन्द में प्रफुल्लित रहते हैं,
क्योंकि 'नाम' उनके सभी पापों और दुःखों का नाश कर देता है।

'शब्द' के साथ जुड़ने के फल का वर्णन पहले चार पौड़ियों में करने की कोशिश के बाद, गुरु नानक साहिब, अब उस इंसान की अवस्था के बारे में बताते हैं, जिसने अपनी इच्छा को प्रभु की रज़ा (हुक्म) में अभेद किया है, जो वर्णन में नहीं आ सकती, क्योंकि उसका हुक्म बयान से परे है। इस संसार में हुक्म के विचार को ही प्रभु की रज़ा माना जाता है। परमात्मा ख़ुद निराकार है। पर जब उसने रूप धारण किया, तो वह 'शब्द' या 'नाम' बना। इस 'शब्द' से फिर, एक के बाद एक, नीचे अन्य कई मंडल अस्तित्व में आये। वह जो 'शब्द' को ध्याता है यानी अपनी आत्मा को जिस्म से समेटता है और इसे 'शब्द' की दिव्य ध्वनि की शक्ति के द्वारा उठने देता है, वह एक से दूसरे मंडल में उन्नति कर सकता है, जब तक वह उस स्रोत में न पहुँच जाये और उसके साथ अभेद हो सके। जैसे ही वह इस मार्ग पर चलता है, उसका मानसिक और आत्मिक अनुभव का दायरा बढ़ता जाता है। उसकी आत्मा उसके पिछले पापों से पवित्र और कर्मों की बेड़ियों से मुक्त हो जाती है। इस प्रकार, वह दुखों के पार हो जाती है और जन्म-मरण के चक्र से बच निकलती है। एक बार कोई सच्ची मुक्ति प्राप्त कर ले, तो वह उस मार्ग पर दूसरों की भी मदद कर सकता है। सचमुच, 'शब्द' की ताकत महान है, परन्तु बदक़िस्मती से बहुत ही थोड़े लोग ही इसे जानते हैं। यह सब पौड़ी 12 से 15 तक में व्यक्त किया हुआ है।

पौड़ी 12

मंने की गति कही न जाइ।।
जे को कहै पिछै पछुताइ।।
कागदि कलम न लिखणहारु।। मंने का बहि
करनि वीचारु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।।
जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

कोई भी, उस व्यक्ति की अवस्था को वर्णित नहीं कर सकता,
कि जिसने प्रभु की रज़ा को अपना बनाया है;
जो कोई भी ऐसा करने की कोशिश करता है,
वह अवश्य अपनी मूर्खता को महसूस करेगा।
कागज़, क़लम या लेखनी ऐसे व्यक्ति की अवस्था को
कभी भी बयान नहीं कर सकते।
ओ! 'नाम' की शक्ति महान है;
किन्तु बहुत थोड़े लोग ही इसको जानते हैं।

पौड़ी 13

मंनै सुरति होवै मनि बुधि।। मंनै सगल भवण की सुधि।।
मंनै मुहि चोटा ना खाइ।। मंनै जम [1]कै साथि न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
सार्वभौमिक चेतना में जागता है और उसे सही समझ आती है;

1. यम : यह उन इंसानों को, जो कि संसार के पार को जानते हैं, पता है कि जिस समय स्थूल खोल उतरता है, आत्माएँ दूसरी दुनिया में ख़ास दूतों के द्वारा दाख़िल होती है, जिन्हें यमदूत कहते है। पापियों को वे बुरी तरह पेश आते हैं, जबकि दूसरों को यमराज के पास ले जाते हैं। मगर जो संसार में 'शब्द' की कमाई करता है, वह यम से बच जाता है, क्योंकि उसे सूक्ष्म दुनिया में सत्गुरु का नूरी स्वरूप लेने आता है और सत्गुरु आत्मिक मंडलों की ओर ले जाने के लिए साथ हो लेता है।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति को सम्पूर्ण सृष्टि का
अतीन्द्रिय ज्ञान व दृष्टि आ जाती है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति दुखों और मुसीबतों से
मुक्त हो जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
मृत्यु के बाद यम के पास नहीं जायेगा।
ओ! 'नाम' की शक्ति महान है;
किन्तु बहुत थोड़े लोग ही इसको जानते हैं।

पौड़ी 14

मंनै मारगि ठाक न पाइ।। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै मगु न चलै पंथु।। मंनै धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
उच्चतर आत्मिक मंडलों में बिना रुकावट दौड़ा चला जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
खुल कर और शान से आत्मिक मंडलों में जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
यम के मार्ग की गलियों बच जाता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति का
सत्य से निकट सम्बन्ध हो जाता है।
ओ, 'नाम' की शक्ति महान है;
किन्तु बहुत थोड़े लोग ही इसको जानते हैं।

पौड़ी 15

मंनै पावहि मोखु दुआरु।। मंनै परवारै साधारु।।
मंनै तरै तारे गुरु सिख।। मंनै नानक भवहि न भिख।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
अन्ततः में मोक्ष को प्राप्त करता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
अपने नज़दीकी परिचितों व सम्बन्धियों को भी
मुक्त करा लेता है;
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति
केवल अपने आपको ही नहीं तारता,
बल्कि जब वह गुरु बनता है,
तो दूसरों का भी, जिनका कि वह मार्ग–दर्शन करता है।
'नाम' के साथ जुड़ने से व्यक्ति इच्छाओं से मुक्त हो,
जन्म–मरण के चक्र से बच जाता है।
ओ! 'नाम' की शक्ति महान है;
किन्तु बहुत थोड़े लोग ही इसको जानते हैं।

गुरु नानक साहिब कहते हैं कि कुल मालिक के साथ अभेद होने का रास्ता केवल 'शब्द और नाम' के साथ जुड़ने से ही है। किसी अन्य साधन से इंसान इस मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता। यह चेतन–धारा, जो 'एकंकार' से निकली है, निकल कर वह समस्त आत्मिक और भौतिक मंडलों को अस्तित्व में लाती है, इन सबके अन्तर और बाहर वह गूंज रही है। यह 'शब्द की धारा' महा पवित्र चेतन मंडलों से चेतन–माया और फिर भौतिक मंडलों में उतरती जाती है और जैसे–जैसे वह भिन्न–भिन्न मंडलों से गुज़रती है, उसकी बदलती जाती है। आत्मिक और सूक्ष्म मंडलों के पाँच बड़े उपखंड हैं, जैसे कि भिन्न–भिन्न ग्रंथों में बताया गया है। यह चेतन धारा जैसे–जैसे इन मंडलों से गुज़रती है, यह पाँच भिन्न–भिन्न आवाज़ों को धारण करती है। इन पाँच आवाजों को, पूर्ण–पुरुषों या जो इस विद्या के माहिर हैं, ने इनको 'पंच शब्द' लफ़्ज़ कह कर बरता है; "पंच" का साधारण अर्थ है

'जो कि प्रधान हो,' और गुरु नानक साहब, पौड़ी के इस अंश में, इन दोनों अर्थों का संकेत देते हैं। वह 'शब्द' मुजस्सम हुआ और हमारे बीच में रहा। सभी संत उसी एकमात्र 'शब्द' के जानने वाले होते हैं; जिसे 'शब्द—नाम' कह कर व्यक्त किया गया है। गुरु नानक साहिब ने 'नाम', 'बानी' (या 'शब्द') और 'हुक्म' (या 'रज़ा') सभी लफ़्ज़ों का उपयोग समानार्थक रूप में किया है। जो दिव्य 'शब्द' का सदैव अनुभव करते हैं, वे उस (प्रभु) का मुखपृष्ठ बन जाते हैं और 'संत' कहलाते हैं। ऐसे पुरुष उसकी दरगाह में मान प्राप्त करते हैं और वे उसके मुख्य कार्मिक होते हैं। इन 'पाँच शब्दों' के प्रकारों के साथ जुड़ने से व्यक्ति प्रभु से मिल जाता है; अन्य सभी साधन व्यर्थ हैं।

यह 'शब्द' ही है, जिससे समस्त रचना उत्पन्न होती है और जिसमें यह प्रलय के बाद वापिस लौटती है। यह हमारे सब के भीतर गूंज रही है और मानुष शरीर— परमात्मा का सचमुच जीता—जागता मन्दिर है। सभी धर्मों के संत इसी के बारे में फ़रमाते हैं, क्योंकि केवल यही एक ऐसा साधन है, जिसके ज़रिये परम सत्य तक पहुँचा जा सकता है।

मुसलमान इसे "बांगे—आसमानी" या आसमानों से आने वाली आवाज़ कहते है। शम्स तबरेज़ और ख़्वाजा हाफ़िज़ शिराज़ी इसी का ही वर्णन करते हैं, जैसा कि पहले ही भूमिका में वर्णित किया गया है। हिन्दू इसी की व्याख्या 'नाद' (ग्रहों का संगीत), 'आकाश—वाणी' (आकाश से उतरने वाली वाणी) और 'उद्गीथ' (परे का राग) के शब्दों से करते है।

सेंट जॉन बाइबिल में इसका इस तरह बयान करते हैं :

> **आदि में 'शब्द' ही था; 'शब्द' प्रभु के साथ था और 'शब्द' ही ख़ुद प्रभु था। सब चीज़ें प्रभु ने बनाईं और उसके बग़ैर कुछ ऐसा नहीं था, जोकि बनाया गया।**
>
> — पवित्र बाइबिल (जॉन 1:1-3)

पौड़ी 16

पंच परवाण पंच परधानु॥ पंचे पावहि दरगहि मानु॥
पंचे सोहहि दरि राजानु॥ पंचा का गुरु एकु धिआनु॥
जे को कहै करै वीचारु॥ करते कै करणै नाही सुमारु॥
धौलु धरमु दइआ का पूतु॥ संतोखु थापि रखिआ जिनि सूति॥
जे को बुझै होवै सचिआरु॥ धवलै उपरि केता भारु॥
धरती होरु परै होरु होरु॥ तिस ते भारु तलै कवणु जोरु॥
जीअ जाति रंगा के नाव॥ सभना लिखिआ वुड़ी कलाम॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ॥ लेखा लिखिआ केता होइ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु॥ केती दाति जाणै कौणु कूतु॥
कीता पसाउ एको कवाउ[1]॥ तिस ते होए लख दरीआउ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु॥ वारिआ न जावा एक वार॥
जो तुधु भावै साई भली कार॥ तू सदा सलामति निरंकार॥

संत (यानी 'शब्द'-मुजस्सम) उस (प्रभु) के दरबार में
  स्वीकृत है और वहाँ के प्रधान चुनिन्दा है;
संत प्रभु के दर की शोभा बढ़ाते हैं,
और बादशाह भी उनकी सम्मान करते हैं;
संत 'एक शब्द' पर ही जीते और ध्यानमग्न रहते हैं।
जो कोई भी उस (प्रभु) की रचना के रहस्य के बारे में
  बातचीत तथा व्याख्या करता है,
वह अनुभव करता है कि करतार के कार्य बेहिसाब हैं।
धर्म या उसकी दया से उत्पन्न हुआ 'शब्द'
कहावत का बैल है, जो रचना को सुव्यवस्थित रूप से
  सम्भाल रहा है,

---

1. हिन्दू मानते हैं कि "एकोअहं बहुस्याम," जिसका मतलब है, "मैं एक से अनेक हो जाऊँ।" मुसलमान लफ़्ज़ कहते हैं, "कुन फ़ैयकून" यानी "जैसे उसने चाहा, बस हो गया, और सारी सृष्टि इज़हार में आ गई।"

जो कोई भी इसे समझता है,
वह सचमुच सत्य को जान लेता है।
यह मात्र 'शब्द' ही है,
जो सारी रचना का कुचलने वाला भार उठाये हुए है;
क्योंकि यदि इस धरती को एक बैल ने उठाया होता,
तो अवश्य किसी और ग्रह ने भी उसे सहारा दिया होगा,
और उसे किसी और ने,
ऐसे ही सब एक दूसरे पर निर्भर होते जाते :
कितना भारी बोझ!
अन्य कौन सी शक्ति इसे सम्भाल सकती है?
कोई भी नहीं, सिवाय 'शब्द' के।
रचना अन्तहीन है;
बेशुमार भिन्न–भिन्न नामों, योनियों और रंगों के जीव हैं;
जिन्हें कर्ता की लेखों की निरन्तर चल रही
  क़लम से गढ़ा गया है।
भला कौन उसकी रचना की गिनती कर सकता है?
यदि कोई कर भी सके, तो कितनी विशाल वह गिनती होगी?
कितनी महान उसकी शक्ति है और
कितना उसकी दस्तकारी का सौन्दर्य है?
भला कौन उसकी दातों के पैमाने का हिसाब लगा सकता है?
उसके 'एक शब्द' से, यह सारी महान रचना बौर में आई;
और लाखों जीवन के दरिया फूट उठे;
मेरे पास भला कौन सी शक्ति है, जिससे कि मैं
  आपकी अद्‌भुत कुदरत की कल्पना करूँ?
मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ, अपना जीवन तुझ पर
  कुरबान करने के लिये;

जो आप को पसन्द लगे, वही भला है।

हे निरंकार! तुम सदा सलामत हो।

इस पौड़ी में गुरु नानक साहिब, उनका वर्णन करते हैं, जो नेक कामों में लगे हुए हैं, और जो प्रभु तक भिन्न—भिन्न प्रकार के मार्गों से पहुँचना चाहते हैं। यह निर्धारित रास्ते, हालाँकि सराहनीय हैं, परन्तु इनका पवित्र 'शब्द' के साथ जुड़ने और अभ्यास करने से प्राप्त प्रभु—दर्शन से मुक़ाबला नहीं किया जाना चाहिये, जो केवल एक ही साधन है, जिससे व्यक्ति उसके हुक़्म को अपनी रज़ा बना सकता है।

पौड़ी 17

असंख जप असंख भाउ।। असंख पूजा असंख तप ताउ।।
असंख गरंथ मुखि वेद पाठ।। असंख जोग मनि रहहि उदास।।
असंख भगत गुण गिआन विचार।। असंख सती असंख दातार।।
असंख सूर मुह भख सार।। असंख मोनि लिव लाइ तार।।
कुदरति कवण कहा वीचारु।। वारिआ न जावा एक वार।।
जो तुधु भावै साई भली कार।। तू सदा सलामति निरंकार।।

असंख्य आपका जाप करते हैं और अंसख्य
आपसे प्रेम करते है;
असंख्य आपकी अराधना करते है और असंख्य
आपकी प्राप्ति के लिये आत्म-संयम रखते और तप करते हैं;
असंख्य धर्म—ग्रंथों में आपकी स्तुति का पाठ करते हैं;
असंख्य योग—साधन में लगे रहते हैं और
संसार से निर्लेप रहते है;
असंख्य आपके भक्त हैं जो आपके गुणों और
विवेक का मनन करते हैं;
असंख्य सत्यवादिता और दान का आचरण करते हैं;

असंख्य बहादुरी से कठोर बैरियों के हथियारों का
मुक़ाबला करते हैं; और
असंख्य आपके अनन्त प्रेम में मौन प्रतिज्ञा कर,
लिव लगाये रहते हैं।
मेरे पास भला कौन सी शक्ति है,
जिससे कि मैं आपकी अद्‌भुत प्रकृति का विचार करूँ ?
मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ, अपना जीवन आप पर
कुरबान करने के लिये;
जो आप को पसन्द लगे, वही भला है।
हे निरंकार! तुम सदा सलामत हो।

पवित्र इंसानों के बारे में फ़रमाने के बाद अब गुरु नानक साहिब अपवित्र इंसानों की सूची तैयार करते हैं।

पौड़ी 18

असंख मूरख अंध घोर।। असख चोर हरामखोर।।
असंख अमर करि जाहि जोर।। असंख गलवढ हतिआ कमाहि।।
असंख पापी पापु करि जाहि।। असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि। ।
असंख मलेछ मलु भखिंखाहि।।[1] असंख निंदक सिरि करहि भारु।।
नानकु नीचु कहै वीचारु।। वारिआ न जावा एक वार।।
जो तुधु भावै साई भली कार।। तू सदा सलामति निरंकार।।

असंख्य मूर्ख हैं, अज्ञानता में अंधे; और
असंख्य हैं चोर और ठग, जो फ़रेब की कमाई पर
फलते-फूलते हैं;

1. असल में लफ़्ज़ 'मल' और 'भख' बरते गए हैं, जिनके अर्थ में, हानिकारक ख़ुराक़ खाने और माँसाहारी ख़ुराक़ और नशीली चीज़ों का संकेत है। शाकाहारी खाना और अहानिकारक पीने की चीज़ें अगर नाजायज़ तरीक़ों से प्राप्त की गई हो, उन्हें भी हानिकारक माना जाता है और ऐसी चीज़ें सही तौर पर रूहानी—मार्ग पर विघ्न डालती साबित होती है।

असंख्य तनाशाही और दमन का प्रयोग करते हैं; और
असंख्य गले काट कर जघन्य अपराध करते हैं;
असंख्य शर्मनाक पापों में मस्त रहते हैं; और
असंख्य झूठे, छल और कपट से पेशा करते हैं;
असंख्य अपवित्र, हानिकारक ख़ुराक़[1] पर निर्भर रहते हैं; और
असंख्य निन्दक अन्यों की निन्दा करके अपने सिर पर
भार चढ़ाते हैं।
असंख्य, जिनका नीच नानक बयान करता है।
मेरे पास भला कौन सी शक्ति है,
जिससे कि मैं आपकी अद्‌भुत प्रकृति का विचार करूँ ?
मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ, अपना जीवन तुझ पर
कुरबान करने के लिये;
जो आप को पसन्द लगे, वही भला है।
हे निरंकार! तुम सदा सलामत हो।

उसका सौन्दर्य अनेक प्रकार का है और उसकी रचना अपरम्पार है। यह सब बयान से परे है। लफ़्ज़ इसका सही प्रकार से चित्रण नहीं कर सकते। हालाँकि लफ़्ज़ असमर्थ हैं, फिर भी केवल वे ही साधन के रूप में हमारे पास हैं। प्रभु स्वयं अनाम हैं और जिन भिन्न—भिन्न नामों से उनका बयान किया जाता है, उन्हें सभी को महापुरुषों ने बतलाया : हालाँकि ये सभी उस विषय को कभी भी पूरी तरह वर्णित नहीं कर सकते, जो कि वर्णनातीत है, फिर भी, वे हमें कुछ इशारा देते हैं और मार्ग की ओर क़दम बढ़ाने के लिए शौक़ पैदा करते हैं।

पौड़ी 19

1. लफ़्ज़ 'हिसाब' और 'बेहिसाब' प्रभु के लिए कुछ महत्व नहीं रखते। वह जो सब में रम रहा है और जो स्वयं सारी रचना की जान है, उसके हर एक अंश को जानता है।

असंख नाव असंख थाव॥ अगंम अगंम असंख लोअ॥
असंख[1] कहहि सिरि भारु होइ॥ अखरी नामु अखरी सालाह॥
अखरी गिआनु गीत गुण गाह॥ अखरी लिखणु बोलणु बाणि॥
अखरा सिरि संजोगु वखाणि॥ जिनि एहि लिखे तिसु सिरि नाहि॥
जिव फुरमाए तिव तिव पाहि॥ जेता कीता तेता नाउ॥
विणु नावै नाही को थाउ॥ कुदरति कवण कहा वीचारु॥
वारिआ न जावा एक वार॥ जो तुधु भावै साई भली कार॥
तू सदा सलामति निरंकार॥

असंख्य तेरे नाम है और असंख्य तेरे धाम हैं;
पहुँच से परे और अगम्य असंख्य आपके आसमानी पठार हैं;
लफ़्ज़ 'असख्य' के द्वारा भी,
हम आपका वर्णन करने में असमर्थ हैं;
लफ़्ज़ों से हम आपका वर्णन करते हैं और
  लफ़्ज़ों से आपकी महिमा करते हैं।
लफ़्ज़ों से, हम दिव्य-ज्ञान प्राप्त करते हैं,
और लफ़्ज़ों में आपके स्तुति-गीत और गुण गाते हैं;
यह लफ़्ज़ ही हम बोलने और लिखने में बरतते हैं;
उन्हीं से हमारा मस्तक-भाग्य लिखा जाता है;
परन्तु जिसने इसे लिखा है, वह इन सभी लेखों से परे है।
जैसे आपका फ़रमान होता है, वैसे ही हम उसे प्राप्त करते हैं।
सब कुछ में आप रमे हुए हैं;
और कोई ऐसा नहीं है, जहाँ आपका 'नाम' नहीं है।
मेरे पास भला कौन सी शक्ति है,
जिससे कि मैं आपकी अद्भुत प्रकृति का विचार करूँ?
मैं अत्यन्त तुच्छ हूँ, अपना जीवन तुझ पर
  कुरबान करने के लिये;

जो आप को पसन्द लगे, वही भला है।
हे निरंकार! तुम सदा सलामत हो।

हमारी आत्माएँ मन और बाहरी इन्द्रियों के आधीन होकर भटक रही हैं और बाहरी संसार के संस्कारों से इस क़द्र मलीन हो चुकी हैं कि हम शरीर का ही रूप बन चुके हैं और अपने आपको तथा परमात्मा को भूल गये हैं। मन को पापों की मैल से कैसे साफ़ किया जाये और आत्मा को जड़ के बन्धन से कैसे मुक्त किया जाये, यही इस पौड़ी का मुख्य विषय है। 'शब्द' के साथ जुड़ कर प्रभु के हुक्म को अपनी रज़ा बनाना ही केवलमात्र उसकी प्राप्ति का साधन है।

कर्म, अच्छे या बुरे, अन्तर्मुखता प्राप्त करने में क़ामयाब नहीं होते, क्योंकि वे इंसान को बाहरी रीति–रिवाज़ों में लम्पट रखते हैं, जिससे कि आत्मा जड़ से बंधी रहती है। भगवान कृष्ण कहते हैं : "नेक और बद कर्म– दोनों ही जीव को बांधने के लिए एक समान हैं, जैसे कि सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी।"

पिछले जन्मों के इकट्ठे हुए पापों की मैल के कारण मन का परदा काला हो चुका है। जब तक वे साफ़ नहीं होते, रूहानियत का सूर्य पूरी शान से चमक नहीं सकता। पवित्र 'नाम'–दिव्य 'शब्द' और इसके सिवाय कुछ अन्य नहीं है, जो धुंध को हटा सकता है और मन को अपनी असली निर्मलता में वापिस ला सकता है। पवित्र मन के सिवाय और कोई पावन आश्रयस्थली नहीं है, जो मन को साफ़ कर सके।

पौड़ी 20

भरीऐ हथु पैरु तनु देह॥ पाणी धोतै उतरसु खेह॥
मूत पलीती कपडु होइ॥ दे साबूणु लईऐ ओहु धोइ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि॥ ओहु धोपै नावै कै रंगि॥

---

1. कर्मों का अटल क़ानून यानी कर्म तथा परिणाम का क़ानून भी उसके हुक्म से ही चलता है।

पुंनी पापी आखणु नाहि।। करि करि करणा लिखि लै जाहु।।
आपे बीजि आपे ही खाहु।। नानक हुकमी आवहु जाहु[1]।।

यदि हाथ पैर और तन गन्दगी से भर जायें,
वे पानी से साफ़ हो जाते हैं;
यदि कपड़े गन्दगी से मलिन हो जायें,
वे साबुन से धो दिये जाते हैं;
यदि किसी की मति पापों से भर जाये,
तो वह केवल 'नाम' के साथ जुड़ने से पवित्र हो सकती है।
कहने से इंसान संत या पापी नहीं बनते,
पर वे जहाँ भी जाते हैं, कर्म अपने साथ ले जाते हैं।
जैसा इंसान बीज बोता है, वैसा ही फल खाता है;
ऐ नानक, जीव जन्म और मरण के चक्र में आते-जाते हैं,
जैसा भी प्रभु का आदेश होता है।

नेक कर्म, जैसे कि दया और दान के कर्म, हालाँकि अपने आप में प्रशंसनीय हैं, मगर उच्चतर आत्मिक अवस्था को प्राप्त करने में ये कोई ख़ास महत्व नहीं रखते। इनकी महत्ता तब समाप्त हो जाती है, जब एक बार आत्मा 'तीसरे तिल' या 'तीसरी आँख' से अन्तरीय यात्रा शुरू करती है : "यदि तुम्हारी एक आँख बन जाए, तो तुम्हारा सारा जिस्म नूर से भर जायेगा।"(–मत्ती 6:22) 'शब्द' की धारा के साथ जुड़ने से, आत्मा 'अमृत–सार' या 'अमृत–सर'– अमृत के सरोवर, मनुष्य के भीतर स्थित अमृतसर पहुँचती है। किसी भी प्रकार की मैल, जो आत्मा पर अब भी बाक़ी रह जाती हैं, आख़िर में यहाँ धुल जाती हैं। इस तरह, आत्मा उच्चतम आत्मिक मंडल, 'सतनाम' की ओर बढ़ने के लायक़ हो जोती है, जिसकी अकथनीय महानता और महिमा है।

पौड़ी 21

तीरथु तपु दइआ दतु दानु॥
जे को पावै तिल का मानु॥[1]
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ॥
अंतरगति तीरथि[2] मलि नाउ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ॥
विणु गुण कीते भगति न होइ॥
सुअसति [3]आथि बाणी बरमाउ॥
सति सुहाणु सदा मनि चाउ॥
कवणु सु वेला वखतु कवणु कवण थिति कवणु वारु॥

1. तिल : इसका साधारण अर्थ तिल के बीज से है। मगर यहाँ इसे उस नाड़ी के लिए बरता है जो दोनों आँखों के बीच और पीछे है। हिन्दू इसे 'शिव–नेत्र' या 'तीसरी आँख' कहते है। बाईबल में इसे एक–आँख का संकेत दिया हुआ है। सूफी इसे नुक़्ता–ए–सवेदा करके बयान करते हैं। इंसान के अन्तर यह रूह का ठिकाना है। यह पहली अवस्था है, जहाँ रूह सिमटती है और ऊँचे आध्यात्मिक मंडलों पर चढ़ने के क़ाबिल होती है। इस बारे में गुरु रामदास जी फ़रमाते हैं "मन हर समय बाहर भटकता है, क्योंकि यह तिल में कभी दाख़िल नहीं हुआ।" भाई गुरुदास जी बड़ी ख़ूबसूरती से अपने सवैईयों और कबित्तों के नः 140, 141, 213, 264, 269, 270 और 294 में वर्णन करते हैं कि परमात्मा का राज़ तब ही खुलता है जब कोई तिल के पीछे घ्यान को यकसू करे। कबीर साहिब भी अपने दोहों और कविताओं में 'तिल' का वर्णन करते हैं।

तुलसी साहब, हमें बताते हैं कि परमात्मा का राज़ केवल तब ही खुलता है जब कोई 'तिल' के पीछे ध्यान टिकाता है।

2. पवित्र अमृत का सरोवर 'अमृत–सर' या 'अमृतसर' इंसान के अन्तर है। इसका बा. हरी अमृतसर के सरोवर के साथ मुकाबला नहीं करना चाहिए, जिसकी नींव गुरु राम दास जी चौथे गुरु ने रखी और गुरु अर्जन साहिब (पाँचवे गुरु) के समय में मुकम्मल हुआ। गुरु नानक साहिब ने यहाँ पर जिस अमृतसर का संकेत दिया है, वह तीसरे आध्यात्मिक मंडल पर है, जिसे 'दसम द्वार' कहते हैं। मुसलमान इसे 'हौज़े–कौसर' और हिन्दू इसे 'प्रयागराज' करके बयान करते हैं। यह वह जगह है जहाँ पर यात्री–रूह सच्चा स्नान करती है और सब मैलों से साफ़ होती है और अपनी असली पवित्रता को दोबारा प्राप्त करती है।

3. 'सत्' या 'सतनाम' 'सचखंड' में निवास करता है, जो कि पाँच आध्यात्मिक मंडलों में सबसे ऊपर है, जहाँ निराकार बसता है। जपु जी की आख़िरी पौड़ियों में भिन्न–भिन्न मंडलों के बारे इनका वर्णन किया गया है।

कवणि सि रुती माहु कवणु जितु होआ आकारु।।
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु।।[4]
वखतु न पाइओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु।।[5]
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु ना कोई।।
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई।।
किव करि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा।।
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा।।
वडा साहिबु वडी नाई कीता जा का होवै।।
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै।।

तीर्थ, तप, दया, दान और भिक्षा–दान,
कोई महत्व नहीं रखते,
जब व्यक्ति 'तीसरे तिल'– अन्तरीय आँख में
प्रवेश करता है;
भक्ति–भाव भरपूर हृदय से 'पवित्र शब्द' की कमाई से,
अन्तरीय आत्मिक मंडलों में जाना नसीब होता है,
जहाँ पापों की मैल पावन तीर्थ (अमृत सरोवर) में
नहाने से धुल जाती है।
मुझ में एक भी गुण नहीं, ऐ प्रभु! सभी गुण आपके हैं;
'पवित्र नाम' की कमाई के बिना भक्ति हो ही नहीं सकती।
आप ही से 'बानी' या 'पवित्र शब्द' उत्पन्न हुआ है,
जो मुक्ति का साधन है;
आप ही अत्यन्त मधुर सत्य हैं और,
मेरा मन आप के लिए तड़पता है।
कौन सी बेला, कौन सा युग,
कौन सा वार, कौन सी तिथि;
कौन सी ऋतु, कौन सी घड़ी थी
कि जब आप सबसे पहले इज़हार में आये ?

पंडित भी इसे नहीं पा सके
यदि पाते, तो पुराणों में दर्ज कर देतेः
ना ही 'काज़ी' इसे जान सके,
यदि जानते, तो यह क़ुरान में मिल जाता;
न ही 'योगी' इसे जानते, न ही अन्य कोई इसे जानता है।
सिर्फ़ कर्ता ही उस समय को जानता है,
जब वह इज़हार में आया।
ऐ प्रभु, मैं तुम्हें कैसे सम्बोधित करूँ, कैसे तुम्हारी स्तुति करूँ ?
कैसे तुम्हारा वर्णन करूँ या तुम्हें जान सकूँ ?
ऐ नानक, सभी कोई उसका बयान करते हैं,
एक, दूसरे से अधिक समझदार;
आप महान हैं, और आपका 'पवित्र नाम' उससे भी महान,
जैसा वह संकल्प करता है, वैसा ही हो जाता है।
आपकी महानता केवल आप ही जानें।
और ऐ नानक, जो अधिक जानने का दावा करते हैं,
वे परलोक में शोभा नहीं पाते।

परमात्मा की रचना नानारूप है और इंसान की बुद्धि के दायरे से बाहर है। सीमित असीम को कल्पित नहीं कर सकता। प्रभु और उसकी रचना को जानने के सभी प्रयास असफल हैं। फिर भी, गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि एक बात जो पक्की है, वह यह है कि सब कुछ 'एकंकार' (एक स्रोत) से ही उत्पन्न होता है।

4. 'पंडित' या बुद्धिमान इंसान वह है, जो हिन्दूओं के धर्म—ग्रन्थों, जैसे कि वेदों और पुराणों के पुरातन नियमों से परिचित है।

5. 'काज़ी' या आलिम मुसलमान, जो मज़हबी क़ानून और विद्या को जानने वाला है।

पौड़ी 22

पाताला पाताल लख अगासा आगास॥
ओड़क ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात॥
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु॥
नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु॥

लाखों पातालों के पाताल और आकाशों के आकाश है;
इंसान निरन्तर उस (प्रभु) की खोज में भटकता रहा हैः
वेदों ने भी यही कहा है।
मुसलमानों की किताबें भी अठारह हज़ार
सृष्टियों के बारे में बताती है,
परन्तु यह ताक़त वही है, जो इन सभी को संभाले हुए है :
यदि इनका लेखा-जोखा हो सकता,
तभी तो इनका लेख लिखा जाता।
सभी बयान करने की कोशिशें व्यर्थ हैं;
ऐ नानक, उसकी महानता को मानो;
स्वयं वही अपने आपको जानता है।

यदि कोई, 'शब्द' के साथ जुड़कर, अनन्त में अभेद हो जाए, तो भी वह उसकी गहराई तक नहीं पहुँच सकता, क्योंकि बेहद की हद ही नहीं होती। इतना ही काफ़ी है कि नदी अपने आपको समुद्र में खो दे। वे भाग्यशाली हैं, जिनके हृदय प्रभु—भक्ति से भरपूर हैं, और कोई भी सांसारिक वस्तुएँ उनका मुक़ाबला नहीं कर सकतीं।

पौड़ी 23

सालाही सालाहि एति सुरति न पाईआ॥
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि॥

समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु।।
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि।।

उसके भक्त उसकी सराहना करते हैं,
फिर भी, उस अनन्त का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त करते;
जैसे नदियाँ और हवायें, जो समुद्र में जा गिरती हैं,
उसकी गहराई को नहीं जान सकतीं।
धन के अम्बार लगा कर और राज्य का विस्तार करके भी,
राजे और महाराजे एक चींटी का भी
मुक़ाबला नहीं कर सकते कि जो प्रभु-प्रेम से भरपूर है।

परमात्मा की रचना अपरम्पार है। अनेक व्यक्तियों ने इसके रहस्य की गहराई तक पहुँचने की कोशिश की है, फिर भी, कोई भी उसे (प्रभु को) नहीं जान सका, जब तक वे उसकी ऊँचाई तक नहीं पहुँचे। जब यह सर्वोच्च आध्यात्मिक मंडल, 'सचखंड' में प्रवेश करती है, तब आत्मा परमात्मा को निहारती है। इसके सिवाय अन्य कुछ कैसे हो सकता है? कैसे कोई चेतन स्वरूप को इन स्थूल आँखों से निर्मल देख सकता है? जब कि इंसान 'शब्द' के परों पर ऊपर उड़ सके, और ऐसा केवल उसकी दया से ही हो सकता है।

पौड़ी 24

अंतु न सिफती कहणि न अंतु।। अंतु न करणै देणि न अंतु।।
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु।। अंतु न जापै किआ मनि मंतु।।
अंतु न जापै कीता आकारु।। अंतु न जापै पारावारु।।
अंतु कारणि केते बिललाहि।। ता के अंत न पाए जाहि।।
एहु अंतु न जाणै कोइ।। बहुता कहीऐ बहुता होइ।।
वडा साहिबु ऊचा थाउ।। ऊचे उपरि ऊचा नाउ।।
एवडु ऊचा होवै कोइ।। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ।।
जेवडु आपि जाणै आपि आपि।। नानक नदरी करमी दाति ।।

उसकी प्रशन्सायें अन्तहीन हैं,
स्तुति के शब्दों का भी अन्त नहीं;
उसके कार्य भी अन्तहीन हैं,
उसकी दातों का भी अन्त नहीं;
उसकी दृष्टि अंतहीन है,
और उसकी प्रेरणाओं का अन्त नहीं;
अंतहीन और समझ के परे उसका ध्येय है,
उसकी सृष्टि अपार है और उसके छोर भी अपार।
कितने ही इंसान उसकी सीमायें पाने हेतु
वेदनाशील भटकते हैं,
पर उसकी हदें अप्राप्त हैं।
वह बेअन्त है और कोई उसका अन्त नहीं जान सकता;
चाहें जितना हम उसे महान कह लें,
वह तो उससे भी अधिक महान है।
प्रभु विशाल है और उसका धाम भी विशाल है;
किन्तु इससे भी विशाल है, उसका 'पवित्र नाम'।
जो उसकी ऊँचाई तक पहुँचता है,
केवल वही उसकी झलक पा सकता है।
ऐ नानक, वह आप ही अपनी महानता को जानता है;
और यह उसकी दया-दृष्टि ही है,
जो हमें उसकी (प्रभु) की ऊँचाई तक ले जा सकती है।

उस मालिक की विशालता महान है। वह बड़ा दातार जो है, वह अपनी दातें सब पर बराबर बख़्शता है– चाहे वे अच्छे हों या बुरे। सभी का उसमें हिस्सा है, कोई भी इनसे महरूम (ख़ाली) नहीं रहता। वह हम सबको, स्वयं हमसे अधिक बेहतरी से जानता है और जो कुछ भी हमारे लिए सबसे भला है, वह हमें बख़्शता है। मगर सबसे महान

उसकी दया की दात, 'शाश्वत संगीत' है। जब वह इंसान पर अपनी दया—मेहर से इसे बख़्शता है, यह उसे बादशाहों का बादशाह बना देती है।

पौड़ी 25

बहुता करमु लिखिआ न जाइ।। वडा दाता तिलु ना तमाइ।।
केते मंगहि जोध अपार।। केतिआ गणत नही वीचारु।।
केते खपि तुटहि वेकार।। केते लै लै मुकरु पाहि।।
केते मूरख खाही खाहि।। केतिआ दूख भूख सद मार।।
एहि भि दाति तेरी दातार।। बंदि खलासी भाणै होइ।।
होरु आखि न सकै कोइ।। जे को खाइकु आखणि पाइ।।
ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ।। आपे जाणै आपे देइ।।
आखहि सि भि केई केइ।। जिसनो बखसे सिफति सालाह।।
नानक पातिसाही पातिसाहु ।।

उस (प्रभु) की दया नानारूपी है,
और कोई उसका आलेख नहीं कर सकता;
वह सब कुछ का दाता है, प्रतिफल का उसे कोई लोभ नहीं;
कितने ही योद्धे (सूरमे) हैं, कि जो उसके दर पर भिखारी है;
और उससे भी अधिक, जिनकी संख्या गिनती के परे है;
कितने ऐसे हैं, जो उसकी दातों का दुरुपयोग करते हुए,
ऐन्द्रियक-सुख में भोग-विलास कराते हैं;
कितने हैं, जो उसकी दातें प्राप्त कर, उसका ही खंडन करते हैं;
कितने ऐसे मूर्ख हैं, जो केवल खाते और उपभोग करते हैं,
पर दातार का विचार तक नहीं करते।
और अनेक भूख, दुख और दर्द से कष्ट में पड़े रहते हैं,
जो कि हे दातार, तुम्हारी ही दातें है।
बन्धन और मुक्ति- दोनों ही तेरे भाणे में हैं;

अन्य कोई का इस में कोई दख़ल नहीं है।
यदि कोई अन्य दावा करे,
जल्द ही उसे इस धृष्टता के लिए पछताना पड़ता है।
वह सब कुछ जानता है और उसके अनुसार ही देता है।
पर ऐसे लोग कम ही हैं, जो इसका अनुभव करते हैं।
ऐ नानक, जिन पर वह मधुर संगीत (सिफ़त सालाह)
की दात बख़्शता है,
वह बादशाहों का बादशाह बन जाता है।

इस पौड़ी में गुरु नानक साहिब परमात्मा के गुणों के अनोखेपन का वर्णन करते हैं– न ही केवल उसके अनोखेपन और अनुपमता का, बल्कि प्रभु की भेजी हुईं अनुभवी आत्माओं (पूर्ण पुरुषों) का, जो उसके पवित्र 'नाम' ('शब्द') का अमूल्य व्यापार करते हैं। बहुतों ने उसकी स्तुति गाई, और अनगिनत आएंगे और ऐसा ही करेंगे, मगर वह प्रभु लाबयान था, लाबयान है और सदा लाबयान रहेगा।

पौड़ी 26

अमुल[1] गुण अमुल वापार॥ अमुल वापारीए अमुल भंडार॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि॥ अमुल भाइ अमुला समाहि॥
अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु॥ अमुल तुलु अमुलु परवाणु॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु॥ अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु॥

1. इस सारी पौड़ी में लफ़्ज़, 'अमूल्य' बरता गया है। इसको एक लफ़्ज में पूरी तरह समझाना मुश्किल है। साधारण तौर पर इसका अर्थ *अनमोल* है, मगर अधिकतर जैसे यह बरता जाता है, जिसका मतलब है, *अद्वितीय* और *अनुपम*, आदि। इसी लिए दोनों अनमोल और अनुपम लफ़्ज़ अनुवाद करने में बरते गए हैं।
2. गोपियाँ : अहीरियाँ, भगवान कृष्ण या गोविन्द की मिथकीय भक्त, जिनके बारे में कहा गया है कि वे उनकी महिमा गाने में अनथक थीं।
3. ईश्वर : एक हिन्दू देवता।
4. सिद्ध : इन्द्रियों पर काबू पाने वाली आत्मायें– जैसे कि महात्मा और सिद्धपुरुष।

अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ।। आखि आखि रहे लिव लाइ।।
आखहि वेद पाठ पुराण।। आखहि पड़े करहि वखिआण।।
आखहि बरमे आखहि इंद।। आखहि गोपी तै गोविंद[2]।।
आखहि ईसर[3] आखहि सिध[4]।। आखहि केते कीते बुध।।
आाखहि दानव आखहि देव।। आखहि सुरि नर मुनि जन सेव।।
केते आखहि आखणि पाहि।। केते कहि कहि उठि उठि जाहि।।
एते कीते होरि करेहि।। ता आखि न सकहि केई केइ।।
जेवडु भावै तेवडु होइ।। नानक जाणै साचा सोइ।।
जे को आखै बोलुविगाडु।। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु।।

बेजोड़ उसके गुण हैं और बेशक़ीमती उसमें रत्न हैं।
बेजोड़ उसके व्यापारी और बेशक़ीमती उसके माल व भंडार हैं।
बेजोड़ उसके आने वाले ख़रीददार हैं
और बेशक़ीमती हैं, उनके सौदे।
बेजोड़ उसका प्रेम है और बेजोड़ हैं वे जो,
अपने आपको उसमें खो देते हैं।
बेजोड़ है उसका क़ानून, बेजोड़ है उसका न्यायालय।
बेजोड़ है उसका इन्साफ़ का तराज़ू,
और बेजोड़ है उसका पैमाना।
बेजोड़ है उसकी उदारता, और बेजोड़ है उसकी स्वीकार्यता।
बेजोड़ है उसकी दया, और बेजोड़ हैं उसके हुक्म।
कितना बेजोड़! कितना बेशक़ीमती!
भला कौन उसका बयान कर सकता है?
उसकी महिमा गाते—गाते उसके भक्त
मूक में निमग्न हो गये हैं;
और इसी प्रकार, वेद, पुराण और विद्वतजन भी।
ब्रह्मा और इन्द्र उसी का महिमा-गान करते हैं;
और गोपियाँ और गोविंद भी इसी प्रकार।

शिव और सिद्ध (सुर, नर, मुनि, जन)
उसके बारे में गाते हैं;
सभी मर्त्य और अमर्त्य उसकी स्तुति गाते हैं।
बेशुमार उसका बखान करते हैं, और
बेशुमार ऐसा करने का प्रयास करते हैं, और
कितने ही बेशुमार उसकी महिमा गाते चले जाते हैं,
फिर भी वह लाबयान का लाबयान ही रहता है,
और रहेगा भी।
व्यक्ति उसे (प्रभु को) उतना ही देख सकता है,
जितना कि वह उस पर अपने आप को प्रकट करता है,
ऐ नानक! उसको एक ही सत्य मानकर जानो।
और जो उस (प्रभु) को जानने का दावा करते हैं,
वे मूर्खों में भी सबसे महान मूर्ख हैं।

गुरु नानक साहिब, अब बड़ी मधुर वाणी में परमात्मा का चित्रण करते हैं, जो अपने महल से अपनी सारी रचनाओं की सम्भाल कर रहा है, जो उसके प्रत्यक्ष सत्कार से झुकती है।

पौड़ी 27

केते राग परी सिउ कहीअनि केते गावणहारे॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु [1]दुआरे॥

1. धर्मराज : कानून का राखा, जो आत्माओं का इंसाफ करता है, वे जब शरीर छोड़कर जाती है, उनके कर्मों के अनुसार 'चित्र' और 'गुप्त' दो देवते, हिसाब रखते हैं।

2. खाणियाँ : गुरु नानक साहिब यहाँ पर चार खाणियों या जीवित प्राणियों के बारे उनके जन्म का तरीक़ा बताते हैं– जैसे कि (1) अंडज : जो अंडों से पैदा होते हैं, जैसे पक्षी, साँप, मछली आदि (2) जेरज : जो गर्भ से पैदा होते हैं– जैसे इंसान और हैवान (पशु) (3) उद्भिज्ज : जो ज़मीन से पैदा होते हैं– जैसे दरख़्त, झाड़ियाँ और सब्ज़ियाँ (4) स्वेदज : जो पसीने और गन्दगी आदि से– जैसे जूएँ और कीड़े आदि।

गावहि चितु गुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे॥
गावहि इंद इदासणि बैठे देवतिआ दरि नाले॥
गावहि सिध समाधी अंदरि गावनि साध विचारे॥
गावनि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मछ पइआले॥
गावनि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे॥ [2]
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे॥
सेइ तुधनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले॥
होरि केते गावनि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई॥

कितना अद्‌भुत आपका दर है :
कितना अद्‌भुत है आपका भवन,
जहाँ बैठ कर आप अपनी महान रचना की निगरानी करते हैं।
बेशुमार वाद्य और स्वरलहरियाँ वहाँ बजते रहते हैं,
बेशुमार राग, बेशुमार गायक हैं, जो आपकी स्तुति गाते हैं।
हवा, पानी और अग्नि के तत्व आपकी महिमा गाते हैं,
और धर्मराज और उसके कर्मों के लेखा-जोखा
रखने वाले लिपिक (चित्रगुप्त) भी, आपकी बढ़ाई गाते हैं।
देवी-देवते, जिनकी सुन्दरता आपकी ही बनाई हुई है,
आपका यश गाते हैं।

शिव, ब्रह्मा और इसी प्रकार अपने सिंहासन पर से
इन्द्र भी आपकी महिमा गाते हैं।
सिद्ध ध्यान में और साधु चिन्तन में आपके गुण गाते हैं।
यती, सती, सन्तोषी और वीर करारे (महावीर)-
सभी आपके गुणानुवाद गाते हैं।
युगों-युगों से प्रकांड पंडित, ऋषि वेदों को पढ़ कर
आपका यश गाते आये हैं।
स्वर्ग, मृतलोक और पाताल में हृदय मोह लेने वाली
अप्सरायें भी आपकी महिमा गाती हैं।
आपके बनाये रत्न (संत) और समस्त अड़सठ तीर्थ
भी आपके गुण गाते हैं।
योद्धे, महाबली, सूरमे और
चारों खानियाँ आपकी महिमा गाती हैं।
खंड, मंडल और ब्रह्मंड, जिनको आपने रचा
और सम्भाल कर रखा है, आपकी बढ़ाई गाते हैं।
वे भी, जो आपको प्रसन्न करते हैं और आपकी
प्रेमाभक्ति में संतृप्त रहते हैं, आपकी महिमा गाते हैं।
और कितने ही बेशुमार हैं, जो आपको गाते हैं,
जिन्हें याद भी नहीं रखा जा सकता,
वे सब नानक के मनस से बाहर हैं।
वही एक केवल सच्चा, सदा विद्यमान प्रभु है।
वह सत्य है और सच्चा उसका 'पवित्र नाम' है।
वह अब भी है और सदा ही रहेगा।
वह, जिसने इन सारी रचनाओं का सृजन किया है,
कभी लुप्त न होगा, भले ही सारे संसार नष्ट हो जायें।
वह, जिसने कुदरत को अनेक रंगों और अनेक सूरतों में
बनाया है,

अपनी बनाई हुई कुदरत की आप ही संभाल करता है,
क्योंकि वह उसकी अपनी महानता के लिये उचित है।
वह सम्पूर्ण प्रभु है, और जैसा वह ठीक समझता है, करता है,
वह बादशाहों का बादशाह है, सर्वशक्तिमान मालिक है,
और हमें, ऐ नानक, केवल उसकी रज़ा पर चलना है।

गुरु नानक साहिब, प्रभु के ध्यान के बारे में बताने के बाद, अब उस तरह के जीवन को बताते हैं, जो उसके (प्रभु के) द्वार पर पहुँचने के लिये बनाना चाहिए।

उनके समय में हिन्दू मत सिर्फ़ जातिवाद और बाहरी धार्मिक रीति—रिवाज़ों में अटका हुआ था। रीति—रिवाज़ जारी थे, मगर चेतनता लुप्त थी। संसार को सब पापों की जड़ माना जाता था और योगी बन जाना और कुछ ख़ास बने हुए साधनों को करना ही सिर्फ़ मुक्ति का साधन माना जाता था।

गुरु नानक साहिब ऐसे दृष्टिकोण की अपूर्णता को बयान करते हैं और ज़ोर देते हैं कि यह बाहरी विधियाँ नहीं हैं, बल्कि अन्तरीय साधना है, जो कि सच्ची आत्मिक उन्नति लाती हैं। योगियों की कानों में लकड़ी की मुद्रिकाएँ और भिक्षुओं का बटुआ पहनने की बजाए, वे सन्तोष, आत्म—सम्मान और अभ्यास करने की सलाह देते हैं; अपने शरीर पर राख मलने, चोला, अंगोछा और डंडा रखने की बजाऐ, वे निरन्तर ध्यानाभ्यास, मौत के लिये तैयारी और जीवित सत्गुरु की शिक्षाओं का सहारा बनाने की सलाह देते हैं। मुक्ति, योगी कहलाये जाने वाले वालों का ही अधिकार नहीं हैं। यह केवलमात्र विशिष्ट आध्यात्मिक साधन के द्वारा ही सम्भव है, और जो इसे प्राप्त करते

1. आई—पंथी : यह योगियों में सबसे ऊँचा मत है।

2. सगल जमाती : बिना जमात (मत) या जिस जमात में विद्यार्थियों में भेदभाव न हो, सब मतों और सब धर्मों के लड़के आपस में प्रेम और सद्भावना रखते हों और एक गुरु के चरणों में बैठते हों।

3. आ—देस : यह मिला—जुला शब्द 'आदि' और 'ईश' (परमात्मा) से बना है। यह योगियों में नमस्कार का एक रूप है।

हैं, यदि वे योगी नहीं भी हैं, तो भी वे सर्वोच्च अवस्था तक पहुँच सकते हैं; और इसके विपरीत जो बाहरी रूप से योगी हैं, परन्तु इस अवस्था को प्राप्त करने में असफल रहे हैं, परमात्मा के दर पर कभी नहीं पहुँच सकते। वह आत्मिक अवस्था, न सिर्फ़ कठोर अन्तरी साधन मांगती है, परन्तु जीवन के प्रति भेदभाव रहित दृष्टिकोण चाहती है– ऐसा नज़रिया, जिसमें इंसान सबको एक समान दृष्टि से बराबर और उस (प्रभु) ही को हर वस्तु में देखे।

पौड़ी 28

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

सन्तोष की मुद्रायें तुम्हारे कानों पर हों;
और दिव्य-ज्ञान के लिए प्रयास और परमात्मा
के लिये सम्मान तुम्हारी झोली हो;
और प्रभु के निरन्तर ध्यान की तुम्हारे (माथे की) भस्म हो।
मौत की तैयारी तुम्हारा चोग़ा हो,
और तुम्हारा शरीर कुंवारी कन्या की तरह पवित्र हो।
गुरु का उपदेश तुम्हारा सहारे की छड़ी हो।
सबसे ऊँचा मज़हब विश्व भ्रातृ-भाव में जागना है,
हाँ, अन्य सभी प्राणियों को अपने ही समान जानो।
अपने मन को जीतो, क्योंकि अपने आपको जीतना
ही संसार को जीतना है।
अभिवादन, अभिवादन उस एक प्रभु का ही है;
जो आदि, पवित्र, शाश्वत, अविनाशी, युगों-युगों से
अपरिवर्तनशील है।

योगियों की बाहरी क्रियाओं की बजाये, अन्तरीय आध्यात्मिक साधनों को अपनाने के बारे में गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं कि हम आध्यात्मिक ज्ञान को अपना भोजन बनायें (क्योंकि इंसान मात्र खाने–पीने पर ही ज़िन्दा नहीं रहता), प्रेम तथा दयालुता को धारण करें और अपने आपको 'दिव्य–शब्द' के संगीत के साथ जुड़ें।

---

1. योगियों के रीति–रिवाज़ों के तरीक़ों का यहाँ पर संकेत दिया हुआ है। जब उनका भोजन (खाना) तैयार हो जाता है, उस खाने को इकट्ठे बैठकर खाने के लिए योगियों को तुरही बजा कर इकट्ठा करने के लिए आवाज़ दी जाती है। गुरु नानक साहिब उन्हें सम्बोधित करते हुए अपने आदर्श पर आने के लिए सब को बुलाते हैं कि आत्मिक आनन्द का रस लो या ज़िंदगी की रोटी खाओ, 'पवित्र शब्द' के साथ जुड़ने से जो सब के अन्तर गूँज रहा है और आत्मिक दावत पर सब को बुला रहे हैं।

2. नाथ : योगी, अपने गुरु गोरखनाथ के आगे झुकते हैं। मगर गुरु नानक साहिब उन्हें सलाह देते हैं कि हमारा एक नाथ (प्रभु या गुरु) है, जो सारी रचना को अपने हुक्म से चला रहा है।

3. रिद्ध : इसका मतलब धन है।

4. सिद्ध : जो लफ़्ज़ असल में बरता गया है, वह है 'सिद्ध', जिसका मतलब किसी कार्य को सिद्ध करना या पूरा कना है। इसे साधारण तौर पर, ईश्वरीय शक्तियों में माहिर होने के लिए बरता जाता है। गुरु नानक साहिब चेतावनी देते हैं कि केवल धन ही नहीं, बल्कि ऐसी ताक़तों का प्रयोग करना भी सर्वोच्च मार्ग पर रुकावटें डालता है।

5. संयोग और वियोग : यह लफ़्ज 'जप जी' में बरते गए हैं और यह दोनों, बिछुड़ने और मिलाने के नियमों पर चलते हैं, जिनके द्वारा मालिक अपना इज़हार करता है। प्रभु के लेखनी (लेखों की क़लम) के अनुसार, इंसान उससे अलग होकर कर्मों के संसार में पैदा होता है। यहाँ आकर वह अपने आपको भूल कर, संसार में इन्द्रियों के रसों–कसों में फंसा लेता है। जब तक वह भक्ति से दूर, संसार में रमा रहता है, उसमें वह भटकता रहता है। मगर जब इसकी छोटी हंगता (अंहकार) इसे प्रभु से अलग कर देती है, अपने आपको आज़ाद महसूस करने लगती है और सक्रिय कर्ता–पने की भूमिका अदा करने लगती है, वह अज्ञानता के कारण जन्म–मरण के चक्कर में खिंची जाती है। स्थूल जीवन में वह दुख और दर्द को भोगता रहमा है, जब तक कि उसमें निजी शान्ति की अन्तरी इच्छा दोबारा उत्पन्न नहीं होती और उसके लिए वह प्रयास करता है। यह फिर उस कर्ता के साथ दोबारा मिलने के लिए इच्छुक हो जाता है, जो कि शान्ति और सुख का अनन्त सोमा है।

यदि इंसान में मुक्ति और प्रभु से पुनर्मिलन का सिद्धान्त न होता, तो किसी की भी आध्यात्मिक जागृति और आत्मिक तरक़्क़ी न होती और संसार का सारा खेल समाप्त हो जाता। इसलिए दोनों असूल वियोग (प्रभु से अलग होना) और संयोग (प्रभु से दोबारा मिलने की इच्छा) संसारी कर्तव्यों को चला रहे हैं।

"हमारे हृदय में तब तक शान्ति नहीं आ सकती, जब तक हम उस (परमात्मा) को प्राप्त न कर लेते हैं।" — सेन्ट ऑगस्टीन

गुरु नानक साहिब उन ख़ातरों से भी आगाह करते हैं, जो आत्मिक सफ़र पर सामने आते हैं। सिर्फ़ धन–दौलत ही रुकावट नहीं, बल्कि वह शक्ति भी, जो कि इंसान आत्म–संयम और आंशिक रूहानी उपलब्धि से प्राप्त करता है, पूर्ण तौर पर प्रभु–अनुभव के रास्ते पर रुकावट बन सकती है। जो कोई इन जादुई शक्तियों का अभ्यास करना शुरू करता है और उनमें महव हो जाता है, वह अपने असली ध्येय को भूलने लगता है। गुरु नानक साहिब, इसीलिए हमें इन शक्तियों से बचने के लिए चेतावनी देते हैं। यदि एक बार हम प्रभु की ओर चलना शुरू कर दें, तो हमें चैन से नहीं बैठना चाहिये या रास्ते से भटकना नहीं चाहिये।

पौड़ी 29

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद।।
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधिअवरा साद।।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग।।
आदेसु तिसै आदेसु।।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु।।

दिव्य ज्ञान तुम्हारी रोटी हो।
दया तुम्हारी प्रबन्धक हो।
दिव्य-राग, जो सब में गूंज रहा है, वही तुम्हारी तुरही हो।
केवल वह सृष्टि का नाथ है और उसने
अपने हुक्म से ही सारी रचना को नथा हुआ है।

1. माई : यह लफ़्ज़ मूल–रूप में माता और माया (भुलेखा) दोनों रूपों में समझे जा सकते हैं। गुरु नानक साहिब दोनों का मतलब बताते हुए, एक माया जैसे कि माता, जिसने तीन बच्चे पैदा किये, जो तीन असूलों को संकेत रूप से बताते हैं जो अपनी हद को सहारा दे रही है। तीन देवते इन तीनों की नुमाइन्दगी करते हैं: ब्रह्मा, विष्णु और शंकर– उत्पत्ति, प्रतिपालना और नाश करने वाले, अपनी मर्ज़ी के बग़ैर, मगर सब उसके हुक्म के अन्दर काम कर रहे हैं। इसलिए गुरु नानक साहिब हमें उपदेश देते हैं कि सब से ऊँचे (प्रभु) की पूजा करो और न कि निचले स्तर के देवी–देवताओं की।

ऋद्धियों और सिद्धियों ने व्यक्ति को प्रभु से दूर रखा है।
संसार संयोग और वियोग के दो असूलों पर चलता है,
और जैसे-जैसे वह (प्रभु) सुनिश्चित करता है,
सभी अपना–अपना हिस्सा पाते हैं।
अभिवादन, अभिवादन उस एक प्रभु का ही है;
जो आदि, पवित्र, शाश्वत, अविनाशी, युगों-युगों से अपरिवर्तनशील है।

गुरु नानक साहिब मुक्ति के साधनों से ध्यान हटा कर उसे प्रभु की सृष्टि की प्रक्रिया में लगाते हैं। समस्त संसार तीन असूलों पर चलता है, जिनका सम्बन्ध, उत्पन्न करने, संभाल करने और नष्ट करने से है। ये सब नियम उसके हुक्म से कार्यरत रहते हैं और ये केवलमात्र उस के प्रतिनिधि (कारिन्दे) हैं। हालाँकि प्रभु इन कारिन्दों पर निगरानी रखता है, मगर यहाँ विरोधाभास यह है कि वे स्वयं उस (प्रभु), जो व्यक्तिगत निराकार है, को नहीं जान सकते, जबकि ये आप वस्तुगत रचना के हिस्से हैं।

पौड़ी 30

एका माई[1] जुगति विआई तिनि चेले परवाणु॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु॥

* हम सब में से अधिकतर यह आम विश्वास रखते हैं कि दुनिया एक ख़ाली मन–घढ़न्त, एक स्वप्न है, जिसमें कोई सच्चाई नहीं है। यह विश्वास साफ़ तौर पर संसार के सब रंग–तमाशों की क्षणभंगुरता पर निर्भर हैं। हर एक चीज़ ऐसी लगती है, जैसे कि टूटते तारे की झलक थोड़ी देर के लिए आती है और फिर गुम हो जाती है। इसीलिए, यह माना जाता है कि इंसान का यहाँ का सफ़र स्वप्न से ज़्यादा नहीं है। मगर गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं कि मालिक सच्चा है, उसके वचन भी अवश्य सच्चे हैं और उसकी रचना न सिर्फ़ भूलभुलैया है, बल्कि वह उसके रहने का पवित्र आवास है। गुरु नानक साहिब ने बड़ी सुन्दरता के साथ एक और जगह कहा है, "इह जग सच्चे की है कोठड़ी, सच्चे का विच वास।"

आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

महान माता (महामाई) ने तीन प्रतिशासक पैदा किये;
पहला उत्पत्ति, दूसरा प्रतिपालना और
अन्तिम विनाश करने वाला।
जैसा वह (प्रभु) चाहता है, वैसा वे करते हैं,
उसके ही हुक्म से वे काम करते हैं।
परन्तु अजीब बात यह है कि वह (प्रभु) उन्हें देखता है,
पर वे उसे नहीं देख सकते।
अभिवादन, अभिवादन उस एक प्रभु का ही है;
जो आदि, पवित्र, शाश्वत, अविनाशी, युगों-युगों से
अपरिवर्तनशील है।

और अब गुरु नानक साहिब अब फिर से, परम सृष्टिकर्ता की ओर लौटते हैं। प्रभु ने सब रचना के भिन्न–भिन्न मंडलों में अपना ऊँचा निवास बनाया हुआ है। जो भी व्यवस्था उसने की है, वह पुख़्ता और सम्पूर्ण है। उसने सब मंडलों के लिये पक्के नियम बना दिये हैं, जिनके द्वारा रचना का संचालन हो रहा है। वह अपरिवर्तनशील स्थायित्व है।

पौड़ी 31

आसणु लोइ लोइ भंडार॥ जो किछु पाइआ सु एका वार॥
करि करि वेखै सिरजणहारु॥ नानक सचे की साची कार [1]॥
आदेसु तिसै आदेसु॥
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु॥

वह रचना के सभी मंडलों में वास करता है।
और उनमें उसकी दया से प्राप्त भंडार हैं,

जिनका जब उसने एक बार संभरण कर दिया,
तो फिर उनको भरने की ज़रूरत नहीं पड़ती;
जो कुछ हमें प्राप्त होता है,
वह केवल उसके आदेश से प्राप्त होता है।
यह वह है, कि जिसने रचना को बनाया है,
और वही इसकी देखरेख करता है।
ऐ नानक! सच्चे मालिक के कार्य भी सच्चे हैं।
अभिवादन, अभिवादन उस एक प्रभु का ही है;
जो आदि, पवित्र, शाश्वत, अविनाशी, युगों-युगों से अपरिवर्तनशील है।

संसारी इच्छायें 'नाम' के साथ जुड़ने के लिए रुकावटें हैं, जो हमारे हृदय को खींचती हैं और हमें व्यक्तिगत सच्चाई से हटा कर बाहरी संसार की ओर खींच ले जाती हैं। इन इच्छाओं पर किस प्रकार क़ाबू पाया जा सकता है? गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं कि प्रभु की लगातार 'याद' या 'सुमिरन' से इसका मार्ग मिलता है। दूसरे सभी संतों और फ़कीरों ने भी यही बयान दिया है। सुमिरन का विषय अधिक विस्तार से भूमिका में लिया गया है।

इंसान के अन्दर दो प्रकार की शक्तियाँ काम कर रही हैं : पहली,'प्राण' शरीर को चलाने वाली धारायें और दूसरी, आत्मिक या चेतन धारायें। अनेक योगियों ने सर्वोच्च अवस्था प्राप्त करने के प्रयास में इन दोनों धाराओं को समेटा। मगर पूर्ण पुरुषों ने (गुरु नानक साहिब भी उनमें से हैं) सिखाया कि प्राणों को इकट्ठा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सुमिरन के द्वारा, प्राणों को छेड़े बिना, आत्मिक

1. इकीस : यह लफ़्ज मूल रूप में 'इकीस' या 'एक–ईश' बरता गया है : 'इक' का मतलब है एक, और 'ईश' का मतलब है प्रभु, इसका मतलब प्रभु से अभेद होना या एकंकार से जुड़ना।
2. फिर, गुरु नानक साहिब ज़ोर देते हैं कि मुक्ति के लिए हमें केवल पुरुषार्थ ही नहीं, बल्कि उसकी दया और उसकी रज़ा पर राज़ी रहने की आवश्यकता है।

धाराओं और अपने ध्यान को आँखों के पीछे टिका कर समेट सकता है, जो कि आत्मा का ठिकाना है। एक बार अगर इंसान आत्मा की सारी धाराओं को इस केन्द्र पर समेट ले (जबकि साँस लेने की, हज़म करने की और ख़ून के दौरे आदि की शारीरिक क्रियायें साधारणतया चलती रहती हैं), तो आत्मा आगे रूहानी मार्ग पर सफ़र कर सकती है। यह एक सरल और कुदरती रास्ता है।

सत्गुरु फ़रमाते हैं :

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म.1, पृ.730)

फिर,

मरना सीखो, ताकि तुम हमेशा की ज़िंदगी को पा सको।

— थॉमस–आ–केम्पिस

इस समेटने की विद्या का गुरु नानक साहिब इस पौड़ी में बयान करते हैं कि जबकि यहाँ वे इसका विस्तार से वर्णन नहीं करते, जैसा कि उन्होंने अपनी तालीम में अन्य जगहों पर किया है। केवल, वे यह दोहराते भी हैं कि 'नाम' के द्वारा मुक्ति प्राप्त करने के लिए केवल पुरुषार्थ ही नहीं, बल्कि उसकी दया और रज़ा की भी आवश्यकता है।

पौड़ी 32

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस।।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस।।
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होइ इकीस।।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस।।
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस।।

एक ज़बान की लाखों बन जायें,
नहीं नहीं, इससे भी बीस गुणा अधिक, और प्रत्येक ज़बान

निरन्तर उसके 'पवित्र नाम' का उच्चारण करे।
इस मार्ग पर प्रभु की ओर जाने वाली ये सीढ़ियाँ हैं,
जिन पर चढ़ कर व्यक्ति उसमें अभेद (एक) हो जाता है।
मंडलों के बारे में सुन कर कीड़े भी
उन पर पहुँचने का अभिलाषी बन जाते हैं,
यह न जानते हुए कि मुक्ति केवल
उसकी दया से प्राप्त होती है,
यदि दूसरे कुछ अन्य कहते हैं,
तो वे व्यर्थ बकबक करने वाले और झूठे हैं।

व्यक्ति की मुक्ति के लिए परमात्मा की दया और रज़ा की अनिवार्यता को ध्यान में रखते हुए, गुरु नानक साहिब सुनिश्चित करते हैं कि वास्तव में, सभी अन्य मामलों में भी उसका हुक्म ही सर्वस्व है।

पौड़ी 33

आखणि जोरु चुपै नह जोरु।। जोरु न मंगणि देणि न जोरु।।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु।। जोरु न राजि मालि मनि सोरु।।
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि।। जोरु न जुगती छुटै संसारु।।
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ।। नानक उतमु नीचु न कोइ।।

आप के पास न तो बोलने की और
न ही चुप रहने की शक्ति है;
न ही कुछ मांगने की या देने की शक्ति है।
आप के पास न तो जीने की और न ही मरने की शक्ति है,
न ही धन की, न उस अवस्था की, जिसके लिए
आपका मन सदा बेचैन रहता है।
आपके पास आत्मिक ज्ञान प्राप्त करने की भी शक्ति नहीं है,
न ही सत्य को जानने की, न ही अपने आप को

संसार से मोक्ष प्राप्त करने की युक्ति है।
जो यह सोचता है कि उसके पास सामर्थ्य है,
वह कोशिश करके देख ले।
ऐ नानक! कोई उत्तम या नीच नहीं है, केवल उसकी मौज से।

यहाँ से 'जप जी' साहिब का अन्तिम अंश प्रारम्भ होता है। इसमें, गुरु नानक साहिब भिन्न–भिन्न आत्मिक मंडलों का वर्णन करते हैं, जिनमें आत्मा को अपने निज–धाम पहुँचने के सफ़र के दौरान गुज़रना पड़ता है। ये गिनती में पाँच हैं :

1. धर्म खंड या कर्म का देश।
2. ज्ञान खंड या ज्ञान का देश।
3. सरम खंड या महाआनन्द का देश।
4. करम खंड या दया का देश।
5. सच खंड या सत्य का देश।

सबसे पहला, धर्म (फ़र्ज़) या कर्म का देश है, जिसको आत्मा को, उच्चतर आत्मिक मंडल पर पहुँचने से पहले पूरी तरह जान लेना पड़ता है। यह वह अवस्था है, जहाँ आत्मा–देहधारी को यह पूरा विश्वास हो जाना चाहिये कि यह प्रभु ही है, जिसने सभी को बांधने वाले अटल कर्मों के सिद्धान्त से बद्ध, समस्त सृष्टि का दृष्यप्रपंच गढ़ा है। कर्म और परिणाम के क़ानून से कोई बच नहीं सकता। जो कुछ इंसान बोता है, उसे वह अवश्य भोगना पड़ता है। कोई उस (प्रभु) की हद के बाहर नहीं है। इंसान के कर्म उसके मरने के बाद उसके साथ जाते

1. अन्तिम दो पंक्तियाँ–"कच पकाई औथे पाइ, नानक गया जापै जाइ"– अनुवाद करने वालों ने इसके भिन्न–भिन्न विचार प्रकट किये हैं; जैसे कि लिखा है कि सच्चे और झूठे वहाँ जाने जाते हैं और इसके बाद धोखा नहीं दे सकते। मगर यह ठीक नहीं लगता क्योंकि यह इस बात को भुला देता है कि यह पंक्तियों उनके लिए कही गईं हैं, जिनका कि उसके दरबार में जिनका मान है। 'कच पकाई' का रूपक अपरिपक्वता तथा परिपक्वता, न कि झूठ और सच, को इंगित करता है।

हैं और मालिक के इंसाफ़ के तराज़ू पर तोले जाते हैं। वे जो इस पर अपूर्ण पाये जाते हैं, उन्हें कर्मों के अनुसार इंसाफ़ के लिए भेजा दिया जाता है। उसके दरबार में, केवल 'दिव्य शब्द' से जुड़ना तथा उसका अभ्यास ही क़बूल है। वे जो उस पर दृढ़ रहते हैं, मान प्राप्त करते हैं।

पौड़ी 34

राती रुती थिती वार॥ पवण पाणी अगनी पाताल॥
तिसु विचि धरती थापि रखि धरम साल॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग॥
तिन के नाम अनेक अनंत॥ करमी करमी होइ वीचारु॥
सचा आपि सचा दरबारु॥ तिथै सोहनि पंच परवाणु॥
नदरी करमि पवै नीसाणु॥ कच पकाई ओथै पाइ॥[1]
नानक गइआ जापै जाइ॥

दिन और रात, महीने और ऋतु बना कर,
आग, हवा, पानी और पाताल,
इन सब के साथ प्रभु ने धरती को धर्म खंड
  यानी कर्मों की क्षेत्र कहकर बनाया है।
और उसमें अनेक रंगों और अनेक रूपों के जीव पैदा किये हैं,
इतने जीव–जन्तु कि जिनका कोई हिसाब नहीं है,
सभी का अपने अपने कर्मों के अनुसार न्याय होता है,
प्रभु सच्चा है और निष्कलंक उसका क़ानून है।
वे जो उसे स्वीकार्य हैं, उसके दरबार में मान प्राप्त करते हैं,
और यह केवल उसकी दया के द्वारा ही है कि

---

1. कर्म भूमि : वह जगह जहाँ हर एक को जैसे वह चाहे, कर्म करने की छूट दी गई है और उसे अपने कर्मों के अनुसार उसका फल भोगना पड़ता है। इस संसार को 'कर्म भूमि' कह कर बयान किया गया है। यहाँ कर्म और फल तथा कर्म और परिणाम का क़ानून चलता है।

2. मेर : मेरु, सुनहरी पर्वत, जो आत्मिक मंडलों में अभ्यासियों को दिखाई देते हैं।

3. ध्रू : भक्त ध्रुव, जो अपनी लगातार भक्ति के कारण मशहूर है।

4. दानव : दैत्य।

व्यक्ति उस विशिष्टता को पा सके।
अपूर्ण वहाँ पूर्ण किये जाते हैं।
ऐ नानक! वहाँ पहुँच कर ही यह रहस्य खुलता है।

इस पौड़ी में गुरु नानक साहिब काफ़ी विस्तार से आत्मा के क्षितिज के विस्तार को बयान करते हैं, जब यह 'ज्ञान खंड' यानी ज्ञान के देश में प्रवेश करती है। यहाँ अभ्यासी कुदरत की रचना को अनेक रूपों में देखता है। यहाँ वह आह्लादक मधुर स्वरलहरियों को सुनना शुरू करता है, जो सारी रचना में गूंज रही हैं। यहाँ वह कुदरत की परिकल्पनाओं और उसके अपरिवर्तनीय नियमों, उसके असंख्य रूपों और रंगों, भाँति–भाँति की रचनाओं और अनेक प्रकार की आशीशों पर, जिन्हें वह पाता है, अत्यन्त हर्ष का अनुभव होता है।

पौड़ी 35

धरम खंड का एहो धरमु॥
गिआन खंड का आखहु करमु॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस॥
केतीआ करम भूमी [1] मेर [2]केते केते धू [3]उपदेस॥
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस॥
केते देव दानव[4] मुनि केते केते रतन समुंद॥
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु॥

धर्म खंड का यहीं तक वर्णन है;
और अब हम ज्ञान खंड का बयान करते हैं;
बेशुमार इसके तत्व, हवा, पानी और आग,

बेशुमार कृष्ण और शिव,
और बेशुमार ब्रह्मा भिन्न–भिन्न रचनाओं के
बेशुमार रूपों और बेशुमार रंगों का निर्माण करते हुए।
बेशुमार कर्मक्षेत्र हैं, बेशुमार स्वर्णिम पर्वत,
और उनमें बेशुमार ध्रुव ध्यान-मग्न हैं।
बेशुमार इन्द्र, बेशुमार सूर्य और चाँद और
बेशुमार भैतिक और सूक्ष्म देश हैं;
बेशुमार सिद्ध, बुद्ध, नाथ और बेशुमार देवी और देवते हैं।
बेशुमार दैत्य, ऋषि-मुनि और बेशुमार रत्न-सागर हैं।
बेशुमार खानियाँ और बेशुमार बाणियाँ- बेशुमार वे हैं,
जो उनको सुनते हैं,
और बेशुमार 'शब्द' के ध्याता हैं,
ऐ नानक! इस खंड के अन्त का कोई अन्त नहीं है।

ज्ञान खंड या ज्ञान के देश की व्याख्या करके गुरु नानक साहिब आगे 'सरम खंड' या आह्लाद के देश का वर्णन करते हैं। यहाँ हर एक चीज़ मन को मोह लेने वाली, ख़ूबसूरत और अद्भुत है, और लफ़्ज़ कोई महत्व नहीं रखते हैं। यह वह स्थान है, जहाँ सुरत, 'शब्द' की शक्ति से परालौकिक बन जाती है और कुदरत की बनाई हुई चीज़ों को वास्तविक रूप में देख सकने के योग्य बन जाती है।

पौड़ी 36

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु॥
तिथै नाद बिनोद कोड अंनदु॥
सरम खंड की बाणी रूपु॥
तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु॥
ता कीआ गला कथीआ न जाहि॥

जे को कहै पिछै पछुताइ॥
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि॥
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि॥

समूचा ज्ञान खंड दिव्य-ज्ञान से प्रकाशमान रहता है,
जबकि दिव्य स्वरलहरियाँ असमाप्य संगीत बजाती रहती हैं,
और ख़ुशी तथा परमानन्द विशालता से विराजते हैं,
आगे, हर्षोल्लास का देश है,
जहाँ 'शब्द' आनन्द विभेर कर रहा है।
यहाँ पर निर्मित हर वस्तु अदभुत रूप से
अनोखी और लाबयान है,
जो भी इसे बयान करने का प्रयास करता है,
उसे अवश्य अपनी ग़लती महसूस करनी पड़ती है।
यहाँ पर मन, मति और बुद्धि अति सूक्ष्म हो जाते हैं,
सुरत अपने आपे में आ जाती है, और देवताओं और
सिद्धों की शक्तियाँ प्राप्त करने के योग्य बन जाती है।

करम (दया) खंड में, इंसान दृष्टिमान संसार की क्षणभंगुर, मोहन लेने वाली चीज़ों से ऊपर उठ जाता है। वह देखता है कि सारी कुदरत नम्रता से प्रभु के चरणों में सेवार्थ विराजमान है। उस (प्रभु) का 'शब्द' आत्मा को इसके पापों से पवित्र और अप्रकट शक्तियों को इसमें जागृत करता है। माया उसकी अन्तर्दृष्टि पर फिर पर्दा नहीं डाल सकती। उसके लिए, परमात्मा हर जगह परिपूर्ण है और वह अब इस तथ्य से पूरी तरह अवगत है। यहाँ पर व्यक्ति विशुद्ध अवस्था में 'शब्द' के साथ आमने—सामने आ जाता है। वह अपने आप को और

1. सीता : श्री रामचन्द्र जी की पत्नी, जो अपनी महान भक्ति के लिए मशहूर है।

2. ठगे : माया या माया का भ्रम।

3. कराड़ा सार : इसका साधारण मतलब, सख़्त जैसे कि लोहा; लाक्षणिक रूप में नामुमकिन या असम्भव।

अपने स्रोत को जान लेता है, क्योंकि तब वह अपने आप का उसी परमात्मा के अंश के रूप में आभास करने लगता है।

आख़िरकार, तीर्थयात्री आत्मा सत्य के देश, 'सच खंड' पहुँचती है। यहाँ वह पूर्ण एकता का अनुभव करती है, और देखती है कि किस प्रकार, सारे संसार उसके हुक्म के द्वारा श्रद्धापूर्वक अचरज व बाअदब प्रेम कार्यरत हैं। ऐसी अवस्था की स्मृतिमात्र भी आनन्ददायी है, परन्तु वह दृष्य ऐसा है, जिसे बाहरी आँख द्वारा कभी देखा नहीं गया, हृदय द्वारा कभी अनुमानित नहीं किया गया और ज़बान द्वारा वर्णित नहीं किया गया।

पौड़ी 37

करम खंड की बाणी जोरु।। तिथै होरु न कोई होरु।।
तिथै जोध महा बल सूर।। तिन महि रामु रहिआ भरपूर।।
तिथै सीतो सीता[1] महिमा माहि।। ता के रूप न कथने जाहि।।
ना ओहि मरहि न ठागे[2]जाहि।। जिन कै रामु वसै मन माहि।।
तिथै भगत वसहि के लोअ।। करहि अनंदु सचा मनि सोइ।।
सच खंडि वसै निरंकारु।। करि करि वेखै नदरि निहाल।।
तिथै खंड मंडल वरभंड।। जे को कथै त अंत न अंत।।
तिथै लोअ लोअ आकार।। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार।।
वेखै विगसै करि वीचारु।। नानक कथना करड़ा सारु[3]।।

इससे और ऊपर है करम खंड या दया का देश,
यहाँ 'शब्द' ही सब कुछ है, और अन्य कुछ प्रबल नहीं हैं।
यहाँ योद्धे-महाबली, मन को जीतने वाले,
प्रेमा-भक्ति से भरपूर होकर निवास करते हैं,
यहाँ भक्त भक्ति में निवास करते हैं,
अनुपम जैसे कि सीता की।
उनके सुन्दर स्वरूप को भुलाया नहीं जा सकता,
यहाँ, जिनके हृदय में प्रभु का बासा है, वे मृत्यु के घेर

और माया की ठगी की पहुँच से परे हैं।
यहाँ सभी लोकों से लाये गये भक्त या साधु बसते हैं,
जो 'सच्चे पातशाह' में रीझ कर शाश्वत सुख में रहते हैं।
सच खंड 'निरंकार' का निवास गृह है।
यहाँ, परमात्मा सब रचनाओं को रचता है,
और रच कर आनन्द लेता है।
यहाँ बड़े-बड़े खंड, मंडल और ब्रह्मंड हैं,
यदि कोई उनकी गणना करना भी चाहे,
तो वह संख्याहीन की संख्या होगी।
यहाँ, निराकार से सभी स्वार्गिक पठार और
अन्य सब कुछ दूसरा आकार में आया,
जो सभी उसके हुक़्म से हरक़त करते हैं।
वह, जो इस अवस्था के दर्शन करने का सौभाग्य रखता है,
इसके मनन में आनन्द लेता है।
परन्तु ऐ नानक, इसकी ऐसी सुन्दरता को बयान करने का
प्रयास करना असम्भव का प्रयास करना है।

अब गुरु नानक साहब, समाप्त करने से पहले उन गुणों को बयान करते हैं, जो किसी अभ्यासी में पहले से आत्मिक मार्ग पर सफलता प्राप्त करने के लिये होने चाहियें। गुरु साहिब इन गुणों, जो संख्या में छः हैं, को सारांश में वर्णित करते हैं। इनमें सबसे पहला, मन, वचन और कर्म की पवित्रता है। यह उच्च जीवन के उदय होने की पूर्वापेक्षा है, और जिस पर रूहानियत का महल खड़ा होता है, वह बुनियाद (नींव) है। क्राइस्ट ने भी इसीलिए कहा है, "मुबारिक हैं वे हृदय जो कि पवित्र हैं, क्योंकि ऐसे हृदय ही प्रभु के दर्शन कर सकेंगे।" पवित्रता,

1. जत या पवित्रता : यह जिस्मानी पवित्रता को सिर्फ़ नहीं, बल्कि इससे भी अधिक, आत्मिक पवित्रता के बेदाग़ विचारों, वचनों और कर्मों को इंगित करती है।

सचमुच एक ऐसी कुन्जी है, जिससे ध्यान का द्वार खुल जाता है, जो प्रभु के निवास की ओर ले जाता है। दूसरे, इंसान अपने धीरज (सब्र) को बढ़ाये, जिससे जो भी कुछ व्यतीत हो, उसे वह प्रसन्नता से बर्दाशत करने के क़ाबिल बने। तीसरे, व्यक्ति अपने मन पर क़ाबू रखे और मन की एकाग्रता के लिए सभी इच्छाओं का निराकरण करे। चौथे, अपने सत्गुरु पर पूर्ण विश्वास रखते हुए, दृढ़तापूर्वक प्रतिदिन 'शब्द' का अभ्यास करे। पाँचवें, इंसान को प्रभु की हाज़िरी का ख़ौफ़ रहे, जिससे कि व्यक्ति को उससे एकरूप होने के लिए अनथक मेहनत करने की प्रेरणा मिले। और इन सबसे ऊपर, व्यक्ति को उस (गुरु) से इतनी प्रबलता से प्यार करना चाहिये, कि उसके सभी मल भस्म हो जायें और उसे प्रभु द्वार तक ले पहुँचे।

पौड़ी 38

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु।। अहरणि मति वेद हथीआरु।।
भउ खला अगनि तप ताउ।। भाँडा भाउ अंमृतु तितु ढालि।।
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल।। जिन कउ नदरि करमु तिन कार।।
नानक नदरी नदरि निहाल।।

जत (पवित्रता) तुम्हारी भट्टी बने, धैर्य तुम्हारी धातु-कर्मशाला,
गुरु की मत (वचन) तुम्हारा निहाई (जिस पर धातु रख कर पीटी जाती है) और सच्चा ज्ञान तुम्हारा हथौड़ा हो।
परमात्मा के भय की तुम्हारी धोंकनी हो और
इससे आत्म-संयम की अग्नि से प्रज्ज्वलित हो,
प्रेम की कुठाली में, दिव्य अमृत पिघले,
मात्र ऐसी टकसाल में, व्यक्ति 'शब्द' में गढ़ा जा सकता है।
केवल वे ही, जिन पर प्रभु की दया-दृष्टि है,
इस मार्ग पर चल सकते हैं,
ऐ नानक, जिस पर वह मेहर करता है (दयादृष्टि डालता है),
वह चिरस्थायी शांति को प्राप्त करता है।

'जप जी' के इस अन्तिम श्लोक (उपसंहार) में, गुरु नानक साहिब, जीवन का सम्पूर्ण दृष्टिकोण पेश करते हुए इसकी प्रकृति, इसके लक्ष्य तथा इसकी मुक्ति का वर्णन करते हैं। हम सब बच्चों की भांति हैं, जिनको धरती—माता से पोषण प्राप्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के बीज बोता है और उसके फल को भोगता है। परमात्मा का इंसाफ़ निष्कलंक है। वे, जो भले कर्म करते हैं, प्रभु के नज़दीक आते जाते हैं; वे जो अच्छे कर्म नहीं करते, उससे दूर होते जाते हैं। केवल वे ही, जो 'पवित्र शब्द' की कमाई करते हैं, उनके अच्छे कर्मों के द्वारा— न ही केवल वे, परन्तु अनेक अन्य भी— उनके साथी और अनुयायी, बच जाते हैं।

सलोकु

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि॥
जिनि नामु धिआइआ गए मसकति घालि॥
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि॥

वायु गुरु है, पानी पिता और धरती माता है,
दिन और रात दो धायें हैं,
जिनकी गोद में समस्त सृष्टि खेल रही है।
हमारे कर्म- अच्छे हों या बुरे,
परमात्मा की दरगाह में पेश किये जायेंगे,
और हमारे अपने कर्मों से,
हम उसके नज़दीक या दूर चले जायेंगे।
वे, जो 'नाम' के ध्याने वाले हैं,
उनकी मेहनत सफल हो जायेगी,
और उनके मुख शोभा से चमकेंगे,

केवल वे ही मुक्ति प्राप्त नहीं करेंगे,

ऐ नानक, परन्तु अनेक और भी उनके साथ मुक्त हो जायेंगे।

यहाँ पर, सभी प्राण–धारी जीव बच्चों की भांति माने गये हैं। जल (वीर्य) पिता है, जो उनको जीवन दे रहा है। धरती, माता की भांति सबका पालन–पोषण करती है। दिवस उन्हें रोज़ी देता है और यह इसलिए, पुरुष धाय की तरह है– जब कि रात्रि उन्हें आराम देती है, जो स्त्री धाय है। सच्चे सत्गुरु का जीवन–प्राण 'दिव्य शब्द' को प्रदान करता है, जिसके बग़ैर इंसान की आत्मा मृतकसम है।

गुरु नानक साहिब और उनकी तालीम पर एक नज़र

गुरु नानक साहिब और उनकी तालीम

गुरु नानक साहिब सिर्फ़ सिक्खों के या हिन्दुस्तान के नहीं, वे सारी मानव जाति के हैं और दुनिया उनकी है। उन्होंने एक परमात्मा की महानता एक भाई–चारा, एक क़ानून, प्रेम और भ्रातृ–भाव के सिद्धांत को दर्शाया है। वे सभी धर्मों और समाजों को आपस में मिलाने आये थे; वे सभी धर्म–ग्रंथों की एकता को बताने आये थे। वे पुरातन सच्चाई को साधारण, आम–फ़हम भाषा में, वह ज्ञान जो सब ऋषियों, मुनियों और महात्माओं की तालीम का सार है, पेश करने के लिए आये और दिखाया कि प्रेम की ज्योति सभी मन्दिरों, तीर्थ–स्थानों और इंसानों के धार्मिक कार्यकलापों में प्रज्ज्वलित है।

प्रभु–प्रेम और मानव–प्रेम ही गुरु नानक साहिब की तालीम का सार है। हमें ग़रीबों की सेवा गुप्त रूप से नम्रता से, बिना दिखावे के करनी चाहिए और पुरातन सब संतों के लिए आदर भाव रखना चाहिये। गुरु साहिब की यह सबसे पहली महान तालीम (शिक्षा) है। जब वे मुल्तान गये जो पीरों और फ़कीरों की स्थली है, पीरों ने दूध का लबालब भरा प्याला गुरु नानक साहिब को भेजा, यह प्रकट करने के लिए कि यह जगह पहले ही महान–आत्माओं से भरी पड़ी है और किसी अन्य के लिए कोई जगह नहीं है। गुरु नानक साहिब, दूध के प्याले में जिस बात का संकेत था, उसे समझ गये और उन्होंने एक चमेली के फूल को दूध के प्याले के ऊपर रख कर वापिस भेज दिया, यह बताने के लिये कि वे चमेली के फूल की तरह ही सभी को सुगन्ध देने आये है। असूलन, सच्चे संत किसी से झगड़ते नहीं। वे मधुर वाणी बोलते हैं और बिना जताये परमात्मा और इंसानों की सेवा करते है।

उन्होंने बड़ी दूर–दूर तक सफ़र किया; इनसे पहले कोई दूसरा महापुरुष उतना पैदल नहीं चला। उन्होंने उदासियाँ (कठिन यात्राएँ)

पैदल कीं, हर एक जो कई–कई वर्षों तक चलती रही : एक उत्तर दिशा में हिमालय की बर्फ़ की ढकी चोटियों पर, जहाँ वे लामाओं, सिद्धों और नाथों, तिब्बती और चीनी लोगों से मिले; दूसरी पूर्व दिशा में नवीन उत्तर प्रदेश, बंगाल और बर्मा; तीसरी दक्षिण की ओर, जिसमें वे संगला द्वीप या सिंहल द्वीप (नवीन श्रीलंका) तक गये और चौथी यात्रा में वे मध्य पूर्वी देशों– बिलोचिस्तान, अफ़गानिस्तान, ईरान, अरब, मक्का–मदीना, इज़राइल, तुर्किस्तान, मिश्र, तुर्की तक गये; इन सब यात्राओं में 30 वर्ष लगे और जबकि उन दिनों सवारी को सुविधा नाम–मात्र ही उपलब्ध थी।

गुरु नानक साहिब की तालीम ने लोगों के जीवन में कई तरीक़ों से परिवर्तन किया। उनकी तालीम आज भी बड़ा महत्व रखती है, जैसा उनके अपने समय में था। भारतीय गणतन्त्र के पुनर्निर्माण के लिये, देश को पक्की बुनियादों पर खड़ा करने के काम में उनकी रूहानी प्रेरणा की ज़रूरत है, क्योंकि भारत को अभी बहुत समस्याओं का सामना करना है और इसकी आज़ादी अभी पूर्ण आज़ादी से दूर है।

गुरु नानक साहिब भारत के इतिहास के एक नाज़ुक समय में आये। देश धड़ेबन्दी के झगड़ों में बँट चुका था और यह मुग़लों के हाथों बड़ी तेज़ी से भूल की ओर जा रहा था। हमें उस ज़माने की शोचनीय हालत की झलक स्वयं गुरु नानक साहिब के अपने लफ़्ज़ों में मिलती है : "राजे कसाई हैं। वे अपनी प्रजा पर सख़्ती से ज़ुल्म करने लगे है। कर्तव्य की भावना समाप्त हो गई है। झूठ धरती पर ऐसे छाया हुआ है, जैसे कि घोर अंधेरी रात (अमावस्या) से भी गहरे अंधकार ने सच्चाई के चाँद को ढाँप लिया हो।"

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिआ॥
कूड़ु अमावस सचु चंद्रमा दीसै नाही कह चड़िआ॥

— आदि ग्रंथ (माझ की वार म.1, पृ.145)

हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के जानी दुश्मन बन गए थे। धर्म का स्वरूप बाहरी कर्मकांड में लुप्त हो चुका था और इंसान की

भावना बाहरी कर्मों और रस्मों–रिवाज़ों में घुट कर रह गयी थी। बाहरी छिलके को ज़्यादा महत्वता दी जा रही थी, बजाये गिरी के, जो कि उसकी असलियत थी। जातिवाद और छुआछूत (ऊँच–नीच का भेदभाव) बुरी तरह असर कर रहा था। लोगों का आत्मविश्वास कम हो रहा था। देश में राजनैतिक और सामाजिक हालात काफ़ी भ्रष्ट हो चुके थे। हालात अत्यन्त दयनीय थे। जिनके हाथ में हुकूमत थी, वे धर्म के नाम पर हर प्रकार के अत्याचार लोगों पर कर रहे थे और विषय–विकारों, लालच, अधर्म और वासनाओं में बहे जा रहे थे। अविश्वास और नफ़रत का बोलबाला था। राजा और प्रजा– दोनों ने ही शर्म और मर्यादा खो दी थी।

इतिहास के ऐसे अंधकारमय समय में गुरु नानक साहिब देश की हालत सुधारने और लाखों हिन्दुस्तानियों के भाग्य जगाने के लिए प्रकट हुए। वे परमात्मा के नाम का संदेश लेकर जगह–जगह गये। अपने लिए कुछ न मांग कर, सिर्फ़ लोगों की सेवा और उनको पतन से बचाने की चिंता में निकले।

गुरु नानक साहिब ने घोर संकट को देखा, जिससे देश गुज़र रहा था। उन्होंने देखा कि संसार दुख और दर्द के महाजाल में जकड़ा हुआ है। मोहताजों और दुखी लोगों की पुकार सुनते हुए, उन्होंने प्रभु से दया की याचना की :

जगतु जलंदा रखि लै आपणी किरपा धारि॥
जितु दुआरै उबरै तितै लैहु उबारि॥

– आदि ग्रंथ (बिलावल की वार म.3, पृ. 853)

बाबर से मिले, तो मुगल बादशाह ने गुरु साहिब को कुछ माँगने के लिए कहा। उन्होंने विनीत भाव से कुछ लेने से इंकार किया और फ़रमाया : “सुन ऐ बादशाह! वह फ़कीर मूर्ख होंगे, जो बादशाह के सामने हाथ फैलाते हैं, क्योंकि परमात्मा ही सिर्फ़ दातार है, जो असीम दातें देता है,” और ज़ोर देकर कहा, “नानक को केवल मालिक की भूख है और उसे किसी चीज़ की चाह नहीं।” बाबर सब फ़कीरों का

बड़ा आदर करता था। एक बार, जब उसे पता चला कि गुरु नानक साहिब को क़ैद में डाल दिया गया है, उसने उन्हें फ़ौरन छोड़ने के लिए हुक्म दिया। बादशाह की प्रार्थना पर गुरु साहिब ने उसे उपदेश दिया, जिसे "नसीयत—नामा" कहा जाता है, जिसमें उन्होंने बादशाह को अल्लाह की इबादत करने की सलाह दी और हर एक के साथ इंसाफ़ और रहम करने को कहा। उन्होनें बताया कि "नाम", "सतनाम" — प्रभु का "शब्द" या "कलमा" ही जीवन के सब रोगों का इलाज है— यहाँ और इसके बाद भी। यह "कलामे—क़दीम"—अनादि नाद, जो सबके दिलों में गूँज रहा है, पर इसे केवल पाक (पवित्र) हृदय वाले ही उसे सुन सकते हैं। "पाक—पवित्र रहो," गुरु साहिब ने फ़रमाया : "हक़ (सच) अपने आप तुम्हारे अंतर प्रकट होगा; अपने दिल में ख़ुदा की मुहब्बत सबसे ज़्यादा रख और उसकी रचना में किसी की भी भावनाओं को ठेस न पहुँचा।"

एक बार इस महान आत्मा, नम्रता में विशाल और प्रभु—प्रेम के पुतले नानक ने एक मौलवी से पूछा : "आपने क्या सीखा है?" मौलवी (शिक्षक) ने कहा : "मैं सब प्रकार के इल्मों का माहिर हूँ। मैंने सब धर्मों की पवित्र तालीम को पढ़ा है। मैं हर एक चीज़ के बारे में जानता हूँ।" तब गुरु नानक साहिब ने अध्यापक से नम्रता से पूछा कि क्या तुमने सचमुच उससे फ़ायदा भी उठाया है? एक जगह गुरु साहिब बड़ी सुंदरता से सच्ची शिक्षा का राज़ बताते हैं :

जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु॥
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु॥
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.16)

जब उन्हें विद्यालय में दाख़िल किया गया, तो उन्होंने गोपाल पान्धे को, जो उनका उस्ताद था, बताया कि "हृदय की क़लम बनाओ और प्रेम की स्याही से बार—बार मालिक का नाम लिखो।"

हिन्दुस्तान में आजकल शिक्षा विधान ने इस महत्त्वपूर्ण आदेश "हृदय की क़लम बनाओ" और "सांसारिक ज्ञान की स्याही बनाओ" को भुला दिया है। सांसारिक ज्ञान किसी स्तर का भी हो, पर्याप्त नहीं है, यदि कोई परमात्मा का अनुभव नहीं करता। हमें ऐसे शिक्षा विधान की ज़रूरत है, जिसमें पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में शाश्वत जीवन की क़ीमत के बारे में बताया गया हो। इसकी जगह हमें रटने की किताबों, तिजारती कोर्स और कुंजियाँ केवल डिग्रियाँ और नौकरियाँ लेने के लिये मिलती हैं। हिन्दुस्तान और दूसरी जगहों में स्कूलों—कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों की संख्या बढ़ती जा रही है, मगर बनावटी शिक्षा पाने वाले लोगों के रहन—सहन में (इख़लाक़ में) ज़रा भी सुधार नहीं हुआ है। "क्या हुआ अगर तुम सारी दुनिया के मालिक बन गये और अपने आपको खो दिया?"

प्रजातन्त्र राज्य विफल हो रहे हैं, मगर प्रजातन्त्र जीवन्त, हमेशा और ख़ुशहाल रह सकता है, यदि दो शर्तें पूरी हो जायें : (1) जब गुटबन्दी और धार्मिक हठ का ख़ातमा हो, (2) जब राज्य सरकारें समाज और इंसानियत के क़ानून का और सबसे ऊपर अनन्त प्रभु, जिसका नाद सर्वत्र में गूंज रहा है, को माने : "धरती पर रहने वाले बच्चों, तुम सब एक हो" गुरु नानक साहिब इस सच्चाई को ताज़ा करने आये थे।

सच्ची और स्थाई आज़ादी मानव जाति के संगठन और स्वाधीनता पर विश्वास के बिना स्थापित नहीं हो सकती है। कैसे? इस तरह से :

1. जब केवल किताबी ज्ञान की बजाये विश्वास पर ज़ोर दिया जाये;

2. जब सुधार की योजनाओं से ज़्यादा संगठन और एकता पर ज़ोर दिया जाये;

3. जब दूसरी चीज़ों की बनिस्बत मानव—जाति की सेवा पर ज़ोर दिया जाये।

गुरु नानक साहिब ने सच्ची स्वाधीनता और इंसान की एकता का मूल इलाज परमात्मा के प्रेम और गुरु के प्रेम में पाया। एक बार जब वे जल समाधि से उठे, उन्होंने फ़रमाया :

ना हम हिंदू न मुसलमान।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म.5 पृ. 1136)

अर्थात दोनों में कोई भेद नहीं है।

परमात्मा ने संसार में सब इंसान एक जैसे बनाये। सब इंसान एक तरह पैदा होते हैं। वे एक ही रास्ते, निर्धारित समय गर्भ में रहने के बाद संसार में आते हैं। सभी इंसानों की बाहरी और अन्त. री बनावट एक जैसी है— सब को दो हाथ, दो पाँव, दो आँखें, दो कान, नासिका, मुँह, गुदा और इन्द्री आदि मिले हैं। हर रोज़ इसकी म्युनिसिपैलिटी जिस्म से गंदगी को बाहर निकालती है। इंसान सबसे पहले इंसान है और तत्पश्चात जिन समाजों के बाहरी चिह्न—चक्र धारण किये, जिनमें वह पैदा हुआ और बड़ा हुआ, इन्हीं को उसने अपना माना— जैसे हिन्दू मत, सिक्ख मत, इस्लाम या ईसाई मत, बौद्ध या जैन या कोई अन्य मत—और ज़िंदगी का राज़ हल करने के लिए, हर एक मत ने अपने—अपने तरीक़े से कोशिश की।

इंसान पहले और आख़िर में इंसान है, चाहे बीच में वह कुछ भी हो। वह परमात्मा के सर्वव्यापी मज़हब का सदस्य है, चाहे वह किसी भी समाज में पैदा हुआ हो। सभी मानव जाति, आत्मा देह—धारियों की है, जैसे कि माला के धागे में मनके होते हैं; परमात्मा की दृष्टि में सब एक हैं, सबको एक जैसे हकूक मिले हैं, केवल जन्म के लिहाज़ से ही कोई ऊँचा—नीचा नहीं हो जाता। आगे, वह चेतन स्वरूप आत्मा है, जो महाचेतन समुद्र का एक क़तरा है। इसलिये, हम सब परमात्मा में भाई और बहनें हैं, चाहे हम किसी भी समाज के सदस्य हों। और फिर, वही ताक़त— "नाम", "शब्द" या "कलमा" जिस्म के सारे भिन्न—भिन्न हिस्सों को, और फिर आत्मा को संयम में रखती है; एक जड़ और दूसरी चेतन। इस बाँधने वाली शक्ति (Controlling Power) के कारण

हम शरीर, जिसमें हम रह रहे हैं, के इस अद्‌भुत घर से बाहर नहीं भाग सकते, चाहे हम कितनी भी कोशिश करें। साँस बाहर जाने के बाद फिर वापस आती है और यह काफ़ी समय तक बाहर नहीं रह सकती। हमारा शरीर तब तक काम करता है, जब तक जीवन प्राण शरीर में टिके रहते है। यह सिलसिला चलता रहता है, जब तक बाँध रही ताक़त शरीर और प्राणों को साथ रखती है। जब वह हट जाती है, तो आत्मा को शरीर छोड़ना पड़ता है। इस लिए शरीर की सारी मशीनरी आत्मा के आधार पर चल रही है, जो हमारा अपना आप है। यदि हम अपनी मर्ज़ी पर, शरीर में रहते हुए, इसे सिमेटना सीख लें, तो हम अपनी असलियत, जो हमें जीवन दान देती है, को जान लेंगे। यही सभी प्राचीन ऋषियों, मुनियों और पूर्व और पाश्चात्य के आध्यात्मिक गुरुओं की तालीम है। यह एक अमली तौर पर, स्वयं जड़ चेतन को अलग करने का मज़मून है। किसी पूर्ण पुरुष की मदद से जो पराविद्या या परे के ज्ञान का माहिर हो— ज्ञान जो कि मन, बुद्धि और इन्द्रियों के घाट से परे है, यह सीधे और आसानी से अनुभव किया जा सकता है। यह बाक़ायदा आत्म—विद्या है, जिसको जान कर, सब कुछ जाना हुआ हो जाता है और बाक़ी कुछ जानने को नहीं रह जाता। फिर, हम अपने शरीर रूपी घर के मालिक बन सकते हैं, और जैसे चाहें इसे चला सकते हैं।

यह "नाम", "सतनाम", "शब्द" परमात्मा की इजहार में आई ताक़त, सारी रचना को अपने नियन्त्रण में रखे हुए है। जब यह हट जाती है, इसका नतीजा प्रलय या महाप्रलय, जैसा मुनासिब हो, होता है।

यह शरीर, जिसमें हम रहते हैं और जिसमें परमात्मा भी रहता है। सारा विश्व ही परमात्मा का घर है, जिसमें परमात्मा इसमें रहता है। यह सचमुच परमात्मा का मन्दिर है। यह सब कुछ किसी सच्चे रूहानी गुरु की कृपा से आत्मा के स्तर पर अनुभूत किया जा सकता है। जब तक हम इस मानव एकता को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक

तौर पर उस धार रही शक्ति के द्वारा, जो हम सब में है, नहीं जान पाते, मानव जाति की सच्ची एकता नहीं हो सकती।

शान्ति और एकता के महान उपदेशक :

एक दिन, गुरु साहिब रावी दरिया में स्नान के लिए गये। दरिया की लहरों में एक आवाज़ आई, "ऐ नानक! मैं तुम्हारे साथ हूँ, मैंने तुम्हें अपना रूप दिया है। इस रूप को तुम अपना आप समर्पित करो। मेरे स्वरूप–"सतनाम" का जाप करो। तुम ऐसे लोगों में घुल–मिल जाओ, जो दुनिया में फँसे नहीं हैं। मेरी चेतनता और शक्ति की उपासना करो। मेरी महानता का ध्यान करो और अपना समझ कर ज़रूरतमन्दों और ग़रीबों की सेवा करो।"

यह आवाज़ सुनते ही उन्होंने महात्मा बुद्ध और भगवान महावीर की तरह, लोगों को परमात्मा के नज़दीक लाने के लिए अपना घर–बार छोड़ दिया, ताकि वे परमानन्द, जो उनके अन्तर बसा हुआ है, उसका पूरा रस ले सकें। लोग हैरान थे कि वे अपनी पत्नी और बच्चों को क्यों त्याग रहे हैं। लोगों के ताना देने पर गुरु साहिब ने जवाब दिया : "मैं उन्हें प्रभु के सहारे छोड़ रहा हूँ, जो हम सबकी प्रतिपालना करता है। संसार घोर आग में जल रहा है, और मैं उस गुप्त अग्नि में, जो सारी मानव जाति को घेरे हुए है, बुझाने जा रहा हूँ।"

यदि हम ध्यान से सत्गुरु द्वारा दी गई रौशन आँखों से देखें तो हम पायेंगें कि हम परमात्मा की पवित्र भूमि पर रह रहे हैं। सभी धर्मस्थान मानव शरीर की नक़ल पर ही बनाये गये हैं, पूजा के लिए यह हरिमन्दिर स्वयं परमात्मा का बनाया हुआ है। हिन्दुओं के मन्दिर इंसान के सिर की तरह ऊपर से गुम्बददार शक़्ल के हैं, मस्जिदें माथे की मेहराब शक़्ल की बनायी हुई हैं। गिरजे और पारसियों के धर्मस्थान नाक की लम्बूतरी शक़्ल के बने हुए हैं। फिर, सब धर्मों के विश्वास करने वाले मानते हैं कि परमात्मा 'ज्योति' और 'श्रुति' है। अन्तर की ज्योति और नाद का नमूना हमारे सब धर्म–स्थानों में

रखा हुआ है, यह बताने के लिए कि ऐसी हक़ीक़त आपके अन्तर में विराजमान है। परन्तु, सच्ची पूजा अन्तर की आँख, 'एक आँख' या 'शिव–नेत्र' के खुलने पर निर्भर होती है, जिससे "दिव्य ज्योति" नज़र आती है, और अन्तर के कान खुलने से "दिव्य संगीत", "आकाश–वाणी" या "बांगे–इलाही" सुनाई देता है। बाहरी साधन, आत्मा और प्रभु–सत्ता (ज्योति और श्रुति) की झलक देखने के बग़ैर उसी तरह हैं कि जैसे अन्धा कहे कि "परमात्मा ज्योतिस्वरूप है," चाहे वह जानता ही न हो कि ज्योति क्या है। अन्तर में ज्योति या नूर प्रकट होना परमात्मा का इज़हार है या इनका "दर्शन" करना कहा जाता है। यह सब और इससे भी अधिक, पूर्ण पुरुष की कृपा से प्राप्त होता है। इस सही नज़रिये से और सही समझ से ही अपने आप सही वाणी और सही कर्म बन जाते हैं। परमात्मा की बादशाहत, जिसके लिए हम सुबह–शाम प्रार्थनायें करते हैं, फिर सचमुच इस धरती पर आ जायेगी। "यह इन्द्रियों के घाट पर नहीं है, यह आपके अन्तर है," ऐसा सब संतों, महापुरुषों ने बयान किया है।

गुरु नानक साहिब धर्म का सुधार करना चाहते थे– उसे (धर्म को) रस्म–रिवाज़ और परम्परा से निकाल कर सादा और अमली बनाना चाहते थे। 'Religion' (धर्म) लफ़्ज़ ग्रीक भाषा की दो धातुओं 'Re' (अर्थात वापस) और 'Ligio' अर्थात जोड़ना या बाँधना से बना है। धर्म कुछ ऐसी चीज़ है, जो आत्मा को परमात्मा से बाँधती और मिलाती है। जब भी महापुरुष आते हैं, वे इंसान, जो उन्हें मिलते हैं और उनके सम्पर्क में आते हैं, अपनी आत्माओं को परमात्मा की प्रकट ज्योति और नाद से जोड़कर पूरा फ़ायदा उठा लेते हैं। महापुरुषों के जाने के बाद ये समाजें बनीं। वे नेक उद्देश्य के लिए बनायी गईं थीं, ताकि उनकी तालीम ताज़ा रह सके। इसमें कोई शक़ नहीं, जब तक आमिल पुरुष रहे, काम बनता रहा; जब वे चले गए, आमिल पुरुषों की कमी के कारण, यह समाजें लकीर की फ़कीर बन कर रह गयी और यह

संस्थायें, जो बड़े उत्तम विचार से बनायी गईं थीं, हमारे हाथों की हथकड़ियाँ और पैरों की ज़ंजीरें बन गयीं।

धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य है कि इंसान जिस्म के द्वारा, मन–बुद्धि के द्वारा, भावना के द्वारा और आध्यात्मिक तौर पर, सब प्रकार से पूर्ण इंसान बने। वही धर्म अच्छा है, जिसमें ऐसे आदर्श वाले लोग पैदा हों, जो हर लिहाज़ से पूर्ण हों। सिक्ख धर्म का परम लक्ष्य है कि "ख़ालसे" बनें। "ख़ालसा" वह है, जिसमें पूर्ण ज्योति का विकास हो।

पूरन जोत जगै घट मै तब खालस ताहि नखालस जानै॥

– दसम ग्रंथ (33 सवैये, पृ.712)

इसी तरह, हिन्दू वह है, जो अपने अन्तर ईश्वर की ज्योति को प्रकट करे और 'शब्द' या 'शाश्वत संगीत' (नाद) को सुने, जिसका नमूना बाहर मन्दिरों और धर्म–स्थानों में ज्योति जगाने का और घंटी बजाने का रखा है। सच्चा मुसलमान वह है, जो अल्लाह का नूर या खुदा का नूर देखता है और 'कलामे–क़दीम' को सुनता है। सच्चा ईसाई इसी तरह वह है, जो परमात्मा की ज्योति को देखता है और परमात्मा की ध्वनि को सुनता है, जो उसे जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर, आत्म–जागृति में ले जाये।

गुरु नानक साहिब ने आध्यात्म के अनुभव पर ज़ोर दिया है, जो हमारे अन्तर मौजूद है; ख़ाली धर्म–ग्रंथों को पढ़ना और पूजा के रीति–रिवाज़ों का पालन करना असलियत की जगह नहीं ले सकते। ये शुरूआती क़दम है, मगर अपने आप में काफ़ी नहीं। गुरु नानक साहिब जीवन के राज़ को खोलने वाले संत–कवि थे, आत्मा और प्रभु–सत्ता, जो मानव जाति में रमी हुई है, उसके उपदेशक थे। वे पवित्र 'नाम' और परमात्मा के प्रेम को जपाने के लिए जगह–जगह पर गये। वे हिन्दुओं के तीर्थों पर मुसलमानों की ज़ियारत–गाहों और दूसरे धर्म–स्थानों पर गए। वह हमारे स्वासों और हाथों और पाँवों से भी नज़दीक है। जैसे लाओट्से का कथन है : "घर से बाहर निकले बिना

ही हम जगत के सार को जान सकते हैं।" इस सार–तत्व को 'नाम', सतनाम, 'शाश्वत शब्द' कहा जाता है। उनका जीवन पवित्र 'शब्द की कमाई और उपदेश देने के लिए समर्पित था। उन्होंने लोगों को बताया कि पवित्र 'नाम' जीवन के सभी रोगों का इलाज है।

उन्होंने हिन्दूओं और मुसलमानों से एक–समान प्रेम किया। हिन्दुओं को सम्बोधित करते, उन्होंने कहा : "पाँच बार परमात्मा की स्तुति और आराधना करो, जैसे मुसलमान भाई अल्लाह की दिन में पाँच बार इबादत करते हैं।" मुसलमानों से बात करते हुए उन्होंने कहा : "अल्लाह की मर्ज़ी (रज़ा) को अपनी माला बनाओ। अपनी ख़ुदी (मैं–पने) को त्याग कर तुम सच्चे मुसलमान बनो।" इस पर कई मुसलमान जज़्बे में पुकार उठे : "नानक में ख़ुदा बोल रहा है।" मक्का शरीफ़ में उन्होंने तौहीद या खुदाई की एकता का सबक़ दिया। हज़रत मौहम्मद साहिब की तालीम का बयान करते हुए उन्होंने 'अल्लाह' का नाम उच्चारण उसी श्रद्धा भाव से किया, जैसे उन्होंने 'हरि' के नाम का किया। उन्हें देखते हुए शेख़ फ़रीद साहिब ने गुरु नानक साहिब का इन लफ़्ज़ों से सत्कार किया : "अल्लाह ही मेरी ज़िंदगी का लक्ष्य है। ऐ फ़रीद! अल्लाह मेरी जान की जान है। एक मालिक को सभी अनेक नामों से पुकारते हैं– राम, रहीम, अल्लाह, वाहेगुरु और अन्य।"

परमात्मा के अनेक आशिक़ हैं और वह उन सबका जीवनाधार है। बेशक़ भिन्न–भिन्न धर्मों के चिह्न–चक्र बनाए हुए हैं, पर सबके सामने एक ही आदर्श है– परम सत्ता की आराधना, जिसे कई नामों से पुकारा जाता है।

गुरु साहिब ने फ़रमाया : "जात पात कोई नहीं है, हम सब भाई हैं।" उनको मानने वाले में हर एक को 'भाई' कहकर सम्बोधन किया जाता था। सब भाई हैं, चाहे राजा हो या गुलाम, अमीर हो या ग़रीब। परमात्मा के दरबार में जात–पात कोई महत्व नहीं रखता। वह जो उसकी पूजा करता है, हरि का प्यारा है।

जात-पात पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई॥

वे ग़रीबों, दुखियों और मोहताजों और पिछड़े लोगों से खुली तरह मेल–जोल रखते थे। उन्होंने अमीरों की अपेक्षा ग़रीबों के निमन्त्रण को क़बूल किया; वे जानते थे कि किसने उन्हें मान–बढ़ाई के लिए बुलाया है और किसकी कमाई पवित्र है।

उन्होंने माना कि आत्मा की जुदाई से बढ़कर कोई पाप नहीं है, जो इंसान के भाईचारे के जीवन की एकता के उलट हो और समाज में भेद–भाव का काम करे। एकता और समानता की इस महान हस्ती ने सब धर्मों और मतों की एकता–परमात्मा की पूजा और गुरु की सेवा करना, को देखा। उनकी इच्छा थी कि सब धर्मों के मानने वाले, सच के खोजी, सर्वशक्तिमान प्रभु के मिलाप की चाह रखने वाले, इकट्ठे मिल बैठें। सबसे ऊँचा धर्म हमें आदर भाव से अध्ययन और परमात्मा की हाज़री पूर्ण चेतनता में अनुभव करना सिखाता है, जैसे कि एक जमात में हर प्रकार के विद्यार्थी। मक्का में उनसे पूछा गया कि आप हिन्दू हो या मुसलमान, तो उन्होंने साफ़ तौर पर और बेखटके फ़रमाया कि ना मैं हिन्दू ना ही मुसलमान, क्योंकि वे दोनों में परमात्मा की अंश को देखते हैं। जब पूछा गया कि दोनों धर्मों, हिन्दू मत या इस्लाम में कौन सा श्रेष्ठ है, उन्होंने फ़रमाया : "नेक करनी के बग़ैर, दोनों धर्मों के माननेवाले नष्ट हो जायेंगे।" एक लफ़्ज़ में उन्होंने फ़रमाया : "जिस किसी मन का भ्रम टूट गया, उसके लिये हिन्दू–मुसलमान एक समान है। बग़दाद में लोगों ने सवाल पूछा कि वे किस समाज के हैं, तो उन्होंने फ़रमाया :

जालि मोहु घसि मसु करि मति कागदु करि सारु॥
भाउ कलम करि चितु लेखारी गुर पुछि लिखु बीचारु॥
लिखु नामु सालाह लिखु लिखु अंतु न पारावारु॥

– आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1, पृ.16)

कुल मालिक, जो धरती पर, आसमानों में, बीच में और सब ओर है। अधिक ज़ोर देने पर पूछा गया कि आख़िर आप हैं कौन? तो

फ़रमाया : "यह जिस्म पाँच तत्वों का बना हुआ है, इसके अन्दर ग़ैब (अदृश्य) की ताक़त खेल रही है, जिसे 'नानक' कहते हैं।"

बार–बार उन्होंने अपने शिष्यों को भेद–भाव के पाप के ख़िलाफ़ चेतावनी दी। एक सुन्दर शबद में उन्होंने फ़रमाया : "असंख्य तेरे पुज. ारी हैं और असंख्य तेरे भक्त और संत हैं, जो प्रेमपूर्वक अपने ध्यान को आप में लगाए हुए हैं। असंख्य बाजे और उनके गाने वाले हैं।"

उनकी यात्राओं में उनके साथ दो सेवादार एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान : भाई बाला और भाई मरदाना थे। गुरु नानक साहिब ने अपना प्यार जात–पात, रंग–नस्ल, वर्ग–वर्ण और मत–मतान्तों के भेद–भाव के बिना सब पर बरसाया। वे ग़रीबों, चोरों और डाकुओं के भी भाई थे। उनके समाजवाद परमात्मा के प्रेम से भरपूर था न कि नास्तिकता का। प्रभु प्रेम की झलक का उभार होने के कारण ही, परमात्मा के भाई–चारे का ख़्याल लोगों के दिलों में घर कर गया।

अब भी एक नया भारत बनाया जा सकता है, मगर वह पश्चिम की अन्धाधुन्ध नक़्ल से नहीं होगा। हमें पूर्व के ऋषियों, मुनियों, संतों और महात्माओं के संदेश को मानना और धारण करना होगा, जो हमारी समाज के हालात से वाक़िफ़ थे और जिनके पीछे रूहानियत के महान विरासत रखी हुई है।

गुरु नानक साहिब परमात्मा की मस्ती में :

छोटी आयु से ही आपको प्रभु के ध्यान में बैठने का शौक़ था। वे जंगल में चले जाते और घंटों एकान्त में लीन रहते। वे महान जीवन पर विचार करते कि सचमुच यह राज़ क्या है? ज़िंदगी कहाँ से आई है? यह हमारे अन्तर कैसे काम करती है? महान करन–कारण प्रभु सत्ता हमें कैसे दिन–प्रतिदिन आधार देती है? क्या इस ताक़त से जुड़ना सम्भव है? ये महत्वपूर्ण सवाल थे, जो उनके सामने थे। नानक के पिता ने समझा कि उनका बेटा पागल हो गया है। एक दिन एक वैद्य को उन्हें देखने के लिए बुलाया। वेद नब्ज़ देखने लगा, तो उन्होंने

कहा : "ऐ वैद्य! मैं पागल नहीं हूँ। मुझे सिर्फ़ परमात्मा के प्रेम–विरह की पीड़ा है। लोग मुझे पागल कहते हैं, मगर मैं पागल नहीं हूँ। मैं सिर्फ़ परमात्मा के प्रेम में मस्त हूँ।"

गुरु नानक साहिब परमात्मा के प्रेम और झलक के लबालब भरे प्याले थे। उन्होंने सबको, जो भी उनके चरणों में आए, प्रभु प्रेम की रोंये बख़्शी। वे 'शब्द–मुजस्सम' थे और हमारे दरमियान (बीच) रहे। उन्होंने, जो भी उनके चरणों में आये, उनके अन्तर की आँखें खोली और उनको अन्तर परमात्मा की ज्योति देखने के क़ाबिल बनाया। जब तक वे इस दुनिया में रहे, दुनिया की रोशनी रहे।

उनमें ज्योति, परमात्मा की ज्योति प्रकट थी और वे उस ज्योति से भटकती मानव–जाति का मार्गदर्शन करते रहे। यह ज्योति लुप्त नहीं होती, मगर हम सब में हमेशा रहती है। हमें उस पूर्ण ज्योति को देखने के लिए अपनी वासनाओं और राग–द्वेष, भेद–भाव और समाजों की धड़ेबन्दी की दीवारों को तोड़ना होगा। दूसरे पूर्ण पुरुषों की भाँति गुरु नानक साहिब ने उपदेश दिया : "ज्योति को प्रकट करो जो आपके अन्तर है। आप नूर के बच्चे हो, आप अपने आप में रोशनी के दीपक बनो।" भारत और संसार के दूसरे मुल्क़ों का मार्ग दर्शन करने के लिए दिव्य ज्योति चाहिये। सारी मानव–जाति के लिए गुरु नानक साहिब का यह संदेश था।

उन्होंने लोगों की भूखी आत्माओं को 'ज़िंदगी के पानी' और 'ज़िंदगी की रोटी' (ज्योति और नाद) का दान दिया, जिनके पाने से किसी और चीज़ की ज़रूरत नहीं रहती। परमात्मा प्रेम है और प्रेम ही प्रभु तक जाने का रास्ता है। वे प्रेम–मुजस्सम थे और उन्होंने हर एक के अन्दर प्रेम को उभारा। उन्होंने हमेशा गाया :

करि किरपा गुर पारब्रहम पूरे अनदिनु नामु वखाणा राम॥
अंमृत बाणी उचरा हरि जसु मिठा लागे तेरा भाणा राम॥

— आदि ग्रंथ (बिहागड़ा म.5, पृ. 543)

रे मन ऐसी हरि सिउ प्रीति करि जैसी जल कमलेहि॥

लहरी नालि पछाड़ीऐ भी विगसै असनेहि॥
जल महि जीअ उपाइ कै बिनु जल मरणु तिनेहि॥
...
रे मन ऐसी हरि सिउं प्रीति करि जैसी चात्रिक मेह॥
सर भरि थल हरिआवले इक बून्द न पवई केह॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1 पृ. 59)

और फिर,

जह देखा तह दीन दइआला॥

— आदि ग्रंथ (मारू की वार म.1 पृ. 1038)

गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं कि परमात्मा को पाने के लिए प्रेम के मार्ग पर चलना चाहिये। केवल परमात्मा से प्रेम करो और अगर आप दूसरों से प्रेम करते हो अपने बच्चों, दोस्तों और रिश्तेदारों से तो उसके सदके प्रेम करो। परमात्मा के लिए तड़प पैदा करो। अपने अन्तर परमात्मा के लिए लगन बढ़ाओ। जब आपके अन्तर उसके लिए बिरह जाग उठे, समझो कि उसके मिलने का दिन आ गया है। गुरु नानक साहिब अन्तर्मुखी जीवन के मार्गदर्शक थे और चाहते थे कि अन्तरी तालीम को बयान किया जाए, मतों और सिद्धातों, रीति—रिवाज़ों में नहीं, बल्कि ग़रीबों और दलितों की नम्रता से सेवा में और यह सेवा भाव परमात्मा और 'नाम' करन—कारण प्रभु सत्ता के प्रेम से पैदा होना चाहिए।

गुरु नानक साहिब ने फ़रमाया :

मन रे किउ छूटहि बिनु पिआर॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1 पृ. 60)

प्रेम पदारथ पाईऐ गुरमुखि ततु वीचारु॥
सा धन आपु गवाइआ गुर कै सबदि सीगारु॥
घर ही सो पिरु पाइआ गुर कै हेति अपारु॥

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1 पृ. 61)

लालि रती सच भै बसी भाइ रती रंगि रासि।।
सा धन रंड प बैसई जे सतिगुर माहि समाइ।।
नारी अंदरि सोहणी मसतकि मणी पिआरु।।
बिनु पिर पुरखु न जाणई साचे गुर कै हेति पिआरि।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म.1 पृ. 54)

जाइ पुछहू सोहागणी वाहै किनी बाती सहु पाइऐ।।
जो किछु करे सो भला करि मानीऐ हिकमति हुकमु चुकाईऐ।।
जा के प्रेमि पदारथू पाईऐ तउ चरणी चितु लाइऐ।
सहु कहै सो कीजै तनु मनो दीजै ऐसा परमलु लाइऐ।
एव कहहि सोहागणी भैणे इनी बाती सहु पाईऐ।।

— आदि ग्रंथ (तिलंग म.1 पृ. 722)

गुरु नानक मालिक में अभेद सच्चे संत थे और उन्होंने दातार की दया की भरपूरता को देखा। उन्होंने फ़रमाया :

नानक का पातसाहु दिसै जाहरा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म.5 पृ. 397)

वे मालिक के प्रेम में मस्त, हमेशा ख़ुमारी में रहते थे।

एक बार, बाबर बादशाह ने गुरु साहिब को भांग का प्याला पेश किया। गुरु साहिब ने उसे ग्रहण नहीं किया और फ़रमाया :

नशा भंग-शराब का उतर जात प्रभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।।

— जनम साखी, गुरु नानक (भाई बाले वाली)

ध्यान के लिए, गुरु नानक साहिब ने रूहानी साधन का एक बाक़ायदा तरीक़ा पेश किया, क्योंकि इसके बग़ैर रास्ते पर तरक़्क़ी नहीं की जा सकती। पहला, 'नाम—भक्ति' है। सिक्खों की सुबह की प्रार्थना, 'जप जी' के शुरू में प्रभु सत्ता को 'सतनाम' या 'सच' कह कर बयान किया है। यह उस का नाम है, जो धर्म का जीवन है। अब मौसम है, 'नाम का बीज डालो,' सब शंकाओं और भ्रमों को फैंक दो।

रेशम और मखमल की पोशाक़ों को जला दो, यदि वे परमात्मा के नाम से आप को दूर ले जाती है।

अब कलू आइए रे।। इकु नामु बोवहु बोवहु।।
आन रुति नाही नाही।। मतु भरमि भूलहु भूलहु।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म.5 पृ. 1185)

गुरु नानक रूहानी मार्ग पर, शिष्य में कैसे—कैसे गुण होने चाहियें; उनका वर्णन करते है। पवित्र जीवन को पाने के लिए मन, वचन और कर्म की पवित्रता पहली चीज़ है। ईसा मसीह ने भी कहा :

मुबारिक है वे हृदय जो पवित्र है, क्योंकि ऐसे हृदय ही परमात्मा को देख सकते है। पवित्रता वह कुन्जी है जो ध्यान के दरवाज़े को, परमात्मा के घर जाने के लिए खोलती है।

दूसरी चीज़, धैर्य (सब्र) और सहनशक्ति को बढ़ाना, अच्छे और बुरे कर्मों को ख़ुशी से बर्दाश्त करना, जो हमारे पिछले कर्मों के फल के कारण आते है।

तीसरी चीज़, मन की स्थिरता, सब इच्छाओं का दमन करना, ताकि जिससे मन की एकाग्रता बनी रहे।

चौथी चीज़, सत्गुरु शक्ति पर पूर्ण भरोसा रखकर 'शब्द' के साथ बाक़ायदा जुड़ना या कमाई करना।

पाँचवीं चीज़, परमात्मा को हाज़िर—नाज़िर समझना। प्रभु से मिलने के लिए, अनथक कमाई करने की प्रेरणा मिलती है।

और सब से बढ़ कर यह कि प्रभु प्रेम की ज्वाला हमारे अन्तर जाग उठे, ताकि उसकी बादशाहत तक पहुँचने के लिए हमारी सब कमज़ोरियाँ ख़त्म हो जायें।

एक आदर्श किसान :

स्वतंत्रता के प्रेमी, गुरु नानक साहिब ने अपने जीवन के प्रारम्भिक दिन खुले खेतों और गाँव की खुली हवा में बिताये। जैसे—जैसे वे बड़े हुए, तो उन्होंने दूर—दूर तक जाकर लोगों के सामाजिक ख्यालों

और रूढ़ियों और कर्म–कांड की ज़िंदगी के विचारों से उनके हृदयों को आज़ाद करने का उपदेश दिया।

दूर–दराज़ की यात्राओं से लौट कर वे करतारपुर में एक किसान के रूप में आ कर बसे। वे धरती के सच्चे सपूत थे, ऐसे किसान थे, जिन्होंने केवल धरती को ही नहीं, बल्कि कई और कठिन चीज़ें– जैसे कि मन–बुद्धि आदि को भी सींचा। मानव की आत्मिक उन्नति और सेवा के बाद उन्होंने ज़बानी धर्मोपदेश और ज्ञान–ध्यान से बढ़कर अपने आप को भूमि सेवा यानी घास और अन्न का उपजाना में लगाया। उन्होंने करतारपुर की बेकार भूमि को कड़ी मेहनत से उपजाऊ बनाया और ग़रीबों और ज़रूरतमन्दों के लिए अन्न उगा कर एक मिसाल पैदा की। करतारपुर में गुरु नानक साहिब ने लंगर भी शुरू किया, जिसमें हर एक की ज़रूरत के अनुसार उसे मुफ़्त लंगर बाँटा जाता था। गुरु साहिब ने फ़रमाया, "रोटी प्रभु की है और जो रोटी वह देता है, वह उसका प्रसाद है।" शिष्यों ने कहा, "रोटी पानी गुरु का है।" फिर गुरु साहिब ने फ़रमाया कि प्रभु सब में है।

उनके शिष्य दूर–दूर जैसे बिलोचिस्तान, अफ़ग़ानिस्तान, मध्य एशिया आदि में थे और इनके अलावा ब्राह्मणों और सूफ़ियों, ऊँची जाति के क्षत्रियों और नीच जाति के चांडालों, सिद्धों और नाथों में से भी थे। इसलिए उनके मानने वालों की जमात में सब प्रकार के लोग थे, जो प्रेम–श्रद्धा के धागे से पवित्र कार्य में बंधे हुए थे और एक दूसरे के प्रेम में, गिरे हुए और नीच जाति के लोगों को उठाने के लिए जुड़े हुए थे। गुरु नानक साहब, रूहानी पिता, जब आयु में बड़े हुए, तो वे हर रोज़ पैदल चलते, खेतों में मेहनत करते, 'नाम' के गुण गाते और स्वाँस–स्वाँस में प्रेम से शुक्राना करते। गुरु साहिब नम्रता की मूर्ति थे और उनके शिष्य अंहकार त्याग कर विनम्र भाव से, बिना दिखावे के, कुदरत की गोद में प्रभु की सेवा करते थे।

करतारपुर से प्रभु प्रेम और मानव प्रेम की चिंगारी सारे पंजाब में फैल गयी। गुरु नानक साहिब के मुख–मंडल के मुख मंडल पर सादग़ी

और गंभीरता झलकती थी, जो संतों के लक्षण हैं। वे एक मज़दूर, धरती को सींचने वाले और ग़रीबों तथा पिछड़े हुओं के दास थे। करतारपुर का जीवन कार्य, पूजा, प्रेम, एकान्त और गुणगान से भरपूर था।

वास्तविक खेती–बाड़ी क्या है, पिता के पूछने पर गुरु नानक साहिब ने बताया :

मनु हाली किरसाणी करणी सरमु पाणी तनु खेतु॥
नामु बीजु संतोखु सुहागा रखु गरीबी वेसु॥
भाउ करम करि जंमसी से घर भागठ देखु॥
बाबा माइआ साथि न होइ॥
इनि माइआ जगु मोहिआ विरला बूझै कोइ॥

— आदि ग्रंथ (सोरठ म.1 पृ. 595)

गुरु नानक साहिब को एंकात के लिए बहुत ज़्यादा चाह थी। उन्होंने अक्सर अपने को प्रभु, सतनाम, अनन्त शब्द; कुदरत की खामोशी में लीन किया, वह मौन, जो तारों भरे आकाश में जगमगाता है और निर्जन पहाड़ों पर बरसता है और बहती जल धारा में कलकल गीत सुनाता है। और वे एंकात में साध–संगत और सेवादारों को, जो उनके पास रहते और जिनको वे हमेशा 'भाई' कहकर सम्बोधित करते थे, भाव सहित, गुप्त सेवा में महव रहते थे।

जीवन की रहनी :

उन्होंने ज़िंदगी में सफलता प्राप्त करने के लिए संयम की सलाह दी। प्रभु के प्रेम में लीन शिष्य साध–संगत की निष्काम और प्रेम सहित सेवा में लीन होता है। ऐसी महान और निष्काम सेवा के कारण कौड़ा राक्षस और सज्जन ठग जैसे कई उनके चरणों में आकर तर गये।

उन्होंने लोगों को ईमानदारी और नेक तरीक़े से रोज़ी कमाने का उपदेश दिया। यह नियम सिर्फ़ शिष्यों और जन सामान्य के लिए ही नहीं था, मगर यह प्रचारकों और धर्माचार्यों के लिए भी

था। उन्होंने यहाँ तक कहा कि जो अपने आपको गुरु या पीर कहलवाता है और दूसरों के दान पर गुज़ारा करता है, ऐसे के आगे मत झुको। वह जो अपनी मेहनत मज़दूरी करके कमाता है और दूसरों को बाँटता है, वह परमात्मा का मार्ग जान सकता है।

गुरु पीर सदाए मंगण जाइ।। ता कै मूलि न लगीऐ पाइ।।
घालि खाइ किछु हथहु देइ।। नानक राहु पछाणहि सेइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म.4 पृ. 1245)

जो कुछ दूसरों का है, उसकी इच्छा करना और उनसे मांगना या हड़पना नहीं चाहिये, क्योंकि यह उतना ही ग़लत और हानिकारक है, जैसे कि सूअर का गोश्त मुसलमान के लिए और गाय का माँस हिन्दू के लिए।

उन्होंने दूसरों का हक़ मारने के लिए लोंगों को मना किया। वह जो दूसरों का ख़ून निचोड़ता है, उसका हृदय कभी पवित्र नहीं हो सकता। बार—बार उन्होंने हृदय की पवित्रता, मालिक के प्रेम में अच्छे कर्म करने पर ज़ोर दिया। सिर्फ़ ऐसे कर्म ही महत्व रखते हैं, न कि धार्मिक चिन्ह्न—चक्र जो किसी ने धारण किये हुए है।

परमात्मा के 'नाम—कीर्तन' के लिए पवित्र हृदय और पाक ज़बान की ज़रूरत है, क्योंकि इनके बग़ैर हमारी सब प्रार्थनायें, चाहें कितनी ऊँची और लम्बी हों, कोई फल नहीं ला सकेंगी। यह केवल ऐसे कर्म हैं, जो प्रभु के तराजू में तोले जाते हैं और इंसान का परमात्मा के साथ सम्बन्ध बनाते हैं। केवल परमात्मा की दया से ही कठोर पापी को एक पुण्य आत्मा बनाया जा सकता है।

गुरु नानक साहिब ने परमात्मा को पाने के लिए कभी भी बाहरी त्याग का रास्ता नहीं बताया। उन्होंने समझाया कि परमात्मा में विश्वास के साथ अपने कर्तव्यों को पूरी तरह निभाते हुए गृहस्थियों के लिए दूसरों की तरह मुक्ति सम्भव है। वे केवल मानव जाति के लिए प्रार्थना करने के गुण में विश्वास नहीं रखते थे, बल्कि जानवरों, पक्षियों और

दूसरे सब जन्तुओं के लिए भी। उन्होंने स्वयं उसकी रज़ा में सबके भले के लिए हमेशा प्रार्थना की।

नानक नाम चढ़दी कला, तेरे भाणे संर्बत दा भला।

गुरु नानक साहिब ने सब पुरुषों और स्त्रियों को आत्मिक जीवन बढ़ाने के लिए ज़ोर दिया।

सगल धरम महि ऊतम धरम।। करम करतूति कै ऊपरि करम।।
जिस कउ चाहहि सुरि नर देव।। संत सभा की लगहु सेव।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म.5 पृ. 1182)

उन्होंने 'महान इंसान' उसे कहा, जो अपनी सब इच्छाओं को त्याग दे और अपने कर्मों के फल की इच्छा न करे।

परमात्मा के चाहने वालों को कहा गया कि हृदय की पवित्रता को बाक़ी सब चीज़ों से बढ़ कर मानो।

वह जो अपने जिस्म का रूप बना हुआ है और जो दिमाग़ और कानों से जिस्मानी वासनाओं में लम्पट है, उसको परमात्मा कभी भी नहीं अपनाता।

जो दूसरों की भलाई चाहता है, उसी का भला होता है। ख़ुशी पाने वाले को दूसरों को भी ख़ुश रखना चाहिए।

गुरु साहिब ने प्रार्थना पर ज़ोर दिया। जहाँ इंसान के पुरुषार्थ नाकाम हो जायें, वहाँ प्रार्थना क़ामयाब होती है। हर रोज एकान्त में बैठो और प्रभु से या सत्गुरु से प्रार्थना करो, ताकि वह आपको दिन—प्रतिदिन अपने या जो उसके नज़दीक है तथा उसके प्रिय है ,नज़दीक लायें।

आख़िरी दिनों में:

वह दिन भी आया जब कि गुरु नानक साहिब ने चोला बदलना था। प्रेम और नम्रता से गुरु नानक साहिब ने अपने गुरुमुख शिष्य अंगद के आगे शीश झुकाया, जो अब उनका रूप बन चुके था, जैसे उनका

नाम संकेत देता है। अंगद अपने सत्गुरु से आत्मिक तौर पर एक रूप हो चुके थे और दोनों एक दूसरे में समाये हुए थे। गुरु साहिब ने उनसे (अंगद से) आशीष मांगी और उन्होंने अपने नश्वर देह के त्याग करने के समय, एक विजय–गीत गाया और सबको मिल कर गाने के लिए कहा, जो उस समय वहाँ उनके इर्द–गिर्द थे।

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बिचारो।।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो।।
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला।।
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ।।...
संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु।।
देहु सजण आसीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु।।

— आदि ग्रंथ (सोहिला गउड़ी दीपकी म.1 पृ. 12)

बहुत सारे शिष्यों के दुख और दर्द में आँसू बह निकले। उन्होंने अपने गहरे दुखद हृदय से पूछा : "आप हमें छोड़ कर जा रहे है। हमें कौन सी रस्म करनी चाहिये? क्या हम आपके निज–धाम को प्रस्थान के समय रीति–रिवाज़ के अनुसार दीया जलायें? क्या परम्परा के अनुसार आपकी अस्थियाँ और राख को गंगा के पवित्र जल में डालें?

इन सवालों के जवाब में गुरु नानक साहिब ने फ़रमाया :

दीवा मेरा एकु नामु दुखु विचि पाइआ तेलु।।
उनि चानणि ओहु सोखिआ चूका जम सिउ मेलु।।...
पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिया सचु नामु करतारु।।
ऐथै ओथै लागै पाछै एहु मेरा आधारु।।
गंग बनारसि सिफति तुमारी नावै आतम राउ।।
सचा नावणु ताँ थीऐ जाँ अहिनिसि लागै भाउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म.1 पृ. 358)

हिन्दू शिष्यों ने पूछा : "क्या हम आपके शव का दाहकरण करें?" और मुसलमान शिष्य कहने लगे : "क्या हम आपका शव दफ़नायें?" गुरु नानक साहिब ने फ़रमाया : "मेरे शव के बारे में मत झगड़ो। हिन्दू

और मुसलमान दोनों फूल ले आयें और मेरे शरीर के दायें बायें रख दें। फिर उन फूलों का, जो मर्ज़ी हो, करें। मगर देखें कि फूल हमेशा ताज़े और हरे–भरे रहें।" गुरु साहिब को रीति–रिवाज़ की मर्यादा के अनुसार अपने शरीर को जलाये जाने या दफ़नाये जाने में कोई रुचि नहीं थी। उन्होंने सिर्फ़ फ़रमाया कि फूल ताज़ा और ख़ुशबूदार रहने चाहियें। वे फल क्या थे? विश्वास और प्रेम के फूल।

यह व्यर्थ है कि लोग गुरु की खोज मढ़ियों और मसानों में करें। जो श्रद्धा और प्रेम के फूल ताज़ा और ख़ुशबूदार रखते हैं, जीवित गुरु उनके हृदयों में हमेशा विराजमान है। वे सब के लिए आये। वे सब के लिए जिये। उनकी तालीम सब के लिए रही।

उन्होंने कोई नया मज़हब नहीं बनाया। उन्होंने सब धर्मों का आदर किया। उन्होंने, जो भी संत आये और जहाँ से भी आये, उनकी इज़्ज़त की। उन्होंने कोई नया मत नहीं सिखाया। उन्होंने प्रेम, विश्वास और शुभ कर्म करने का उपदेश दिया। उनके लिए सब लोग प्रभु के ही थे। उन्होंने परमात्मा का जलवा हिन्दुओं और मुसलमानों में देखा। संसार के सब देशों में उन्होंने इंसान का अनन्त जन समूह देखा। सब देशों और सब लोगों में उन्होंने 'नाम' या 'शब्द' का गुणगान किया।

गुरु नानक साहिब शन्ति, सद्‌भावना और एकता की एक महान हस्ती थे। वे ज्योति के मीनार थे और सबको सत्तर वर्ष (1469-1539) तक ज्योति प्रदान करते रहे। मानव जाति की सप्रेम सेवा का कार्य, अदृष्य प्रभु सत्ता का साक्षात्कार उनके उत्तराधिकारियों ने भी जारी रखा, गुरु नानक साहिब की पाँचवीं पीढ़ी (गद्दी) के गुरु अर्जन साहिब ने गुरुओं की बाणी और अन्य धर्मों के कई संतों की बाणी, जो उनको इस कार्य के लिए मिल सकी, पवित्र ग्रंथ में, जो सिक्खों का महान ग्रंथ है, एकत्र की। इस पवित्र ग्रंथ में एक महान ज़ियाफ़तख़ाने (Banquet Hall) की नींव रखी और जिसमें परम्परा से चली आ रही आत्मज्ञान की मनचाही और सुन्दर ख़ुराक़ पेश की। इस प्रकार विश्व धर्म संगम का नमूना प्रस्तुत किया।

प्रेम पुरस्कार नहीं चाहता। यह अपने आप में पुरस्कार है। प्रेम सेवा और कुरबानी नहीं जानता है। अन्तिम दो गुरु–गुरु तेग़ बहादुर साहिब और गुरु गोबिन्द सिंह साहिब ने अपना सब कुछ प्रभु प्रेम के सदक़े मानव जाति के लिए कुर्बान किया।

संक्षिप्त जीवन चरित्र :
परम संत कृपाल सिंह जी महाराज

परम संत कृपाल सिंह जी महाराज 6 फ़रवरी, 1894 ई. में, ज़िला रावलपिंडी के एक छोटे से गाँव, सय्यद कसराँ में एक संभ्रात सिक्ख घराने में पैदा हुए। रखने वालों ने नाम भी चुन कर रखा— 'कृपाल', जिसने दया–मेहर के ख़ज़ाने दोनों हाथों से लुटाये और रूहानियत (आत्मज्ञान) को दौलत से दुनिया को मालामाल कर दिया।

अध्ययनशील विद्यार्थी

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' बचपन ही से महापुरुषों के लक्षण आप में दिखाई देने लगे थे। घर से खाने–पीने की जो चीज़ें इन्हें मिलतीं, वे सब अपने साथी बालकों को बाँट देते और आप किसी एकांत स्थान में जाकर ध्यान में लीन हो जाते। इनका बचपन का ज़माना अनगिनत चमत्कारों से भरा पड़ा है, जिसके कारण 6 वर्ष की आयु से ही लोग इन्हें संत मानने लगे थे। इनका विद्यार्थी जीवन ज्ञान प्राप्ति और अध्ययनशीलता की अथक लगन का नमूना था। स्कूल की पढ़ाई के ज़माने में कॉलिज की पूरी लायब्रेरी की किताबें आपने पढ़ डाली थीं।

ज्ञान प्राप्ति की अनन्य लगन

आप मिशन स्कूल में पढ़ते थे, जहाँ ईसाई पादरी अक्सर लैक्चर देने आया करते थे। एक बार एक पादरी साहब स्कूल में आए और एक एक कक्षा में जाकर विद्यार्थियों से उनकी इच्छाओं–आकांक्षाओं और जीवन के आदर्श के बारे में कई सवाल पूछे। जब इनकी (कृपाल सिंह जी की) कक्षा में पहुँचे तो पादरी साहब ने पूछा, "बच्चों! तुम किस लिए पढ़ रहे हो? पढ़–लिख कर तुम क्या बनना चाहते हो?" अपनी–अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न उत्तर लड़कों ने दिए। किसी ने कहा, मैं पढ़ाई ख़त्म करके डॉक्टर बनूँगा, किसी ने कहा, मैं इंजीनियर बनूँगा, किसी ने कुछ, किसी ने कुछ

कहा। रस्मी से जवाब थे, जिनके पीछे एक ही उद्देश्य था कि पढ़–लिख कर रोज़ी पैदा की जाए। जब कृपाल सिंह जी की बारी आई, तो उन्ह. ोंने कहा, "I read for the sake of knowledge," अर्थात् मैं ज्ञान प्राप्ति के लिए पढ़ रहा हूँ। पादरी साहब ये जवाब सुनकर बहुत ख़ुश हुए और भविष्यवाणी की कि ये लड़का एक दिन दुनिया में नाम पैदा करेगा।

यह जवाब ज्ञान प्राप्ति के लिए अनन्य लगन का परिचायक था, जो इन्हें उस परम ज्ञान की मंज़िल तक ले गयी, जिसको पाकर सब कुछ जाना हुआ और पाया हुआ हो जाता है।

जन-कल्याण की प्रेरणा

संत कृपाल सिंह जी ने पूर्व और पश्चिम के परमार्थाभिलाषियों के पथ–प्रदर्शन के लिए अनेकों ग्रंथ लिखे हैं, लेकिन सबसे बड़ा ग्रंथ उनका अपना जीवन है, जिसके महत्त्वपूर्ण दृष्टांत अंधेरी रात में चमकते तारों के समान जीवन पथ के यात्री को रास्ता दिखाते हैं। 12 वर्ष की आयु में श्री रामानुज के जीवन वृत्तांत में उन्होंने पढ़ा कि जब वे गुरु से दीक्षा लेकर वापस घर लौटे, तो गाँव के लोगों को इकट्ठा करके गुप्त मंत्र, जो गुरु से मिला था, उन्हें बताने लगे। लोगों ने टोका कि यह तुम क्या कर रहे हो, गुरुमंत्र बताना महापाप है, नरकों में जाओगे। रामानुज ने कहा, "अकेला मैं ही नरकों में जाऊँगा ना! यह सारे लोग तो बच जाएँगे।" आप फ़रमाते हैं, "यह वृत्तांत पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ और मैंने सोचा कि यदि यह आत्मज्ञान की यह दात कभी मेरे हाथ आई, तो मैं भी उसे इसी तरह मुफ़्त लुटा दूँगा।"

जीवन का लक्ष्य

1911 ई॰ में आपने मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास की। उस वक़्त आपकी आयु 17 वर्ष की थी। अब यह सवाल सामने आया, जो पढ़ाई ख़त्म होने पर हरेक विद्यार्थी के सामने आता है, कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? मुझे ज़िंदगी में क्या काम करना है? आप फ़रमाते हैं कि "पूरे सात दिन मैंने इस सोच में गुज़ार दिए और अंत में फ़ैसला किया कि मेरे लिए परमात्मा पहले है, दुनिया बाद में।" फिर सारा जीवन इस आदर्श– प्रभु–प्राप्ति में लगा दिया।

महान जीवन की तैयारी

महाराज कृपाल सिंह जी के बचपन और विद्यार्थी जीवन से यह तथ्य दिन के उजाले की तरह सामने आता है कि उन्हें शुरू ही से उस महान कार्य का, जो आगे चलकर उन्हें करना था, पूर्ण आभास था। बचपन ही से उनका हर क़दम उस महान जीवन की तैयारी के लिए उठता रहा। उस जीवन के लिए असाधारण संस्कार एवं क्षमताएँ आप लेकर आए थे। चार वर्ष की आयु में ही वो ध्यानास्थित होकर अन्तर दिव्य मंडलों में विचरने लगे थे। आप फ़रमाते थे कि सुरत अर्थात् आत्मा के सिमट जाने से नींद का काम पूरा हो जाता है। आत्मा पिण्ड (स्थूल शरीर) को छोड़ ऊपर दिव्य मंडलों की सैर करके वापस आती है, तो शरीर recharge हो जाता है अर्थात् नया जीवन प्राप्त करता है। ये उच्च प्रवृत्तियाँ और संस्कार आप में जन्मजात थे और इनसे आप ने जीव–कल्याण के महान कार्य में बड़ा काम लिया।

प्रभु–प्राप्ति की ओर

उन्हीं दिनों एक घटना घटी, जिसने प्रभु की तलाश की चिंगारी को, जो इनके हृदय में सुलग रही थी, एक धधकती ज्वाला बना दिया। लाहौर में आप एक जवान औरत का हाल देखने गए, जो बीमार थी और जीवन के अंतिम स्वाँस ले रही थी। सहसा वह अपने रिश्तेदारों से कहने लगी, ″मेरा कहा–सुना माफ़ करना, मैं जा रही हूँ,″ यह कहकर प्राण त्याग दिए। ये दृश्य देखकर आप सोचने लगे कि वह क्या चीज़ थी जो इस औरत के शरीर से निकल गई है, जिससे यह मुर्दा पड़ी है और हममें वह चीज़ अभी मौजूद है? वह कौन–सी ताक़त है, जो हाड़–माँस के इस शरीर को चलाती है और जब इससे निकल जाती है, तो मिट्टी का ढ़ेर बाक़ी रह जाता है? शव के साथ आप श्मशान भूमि पहुँचे। वहाँ उस जवान औरत की चिता के पास ही एक बूढ़े आदमी की लाश पड़ी थी। यह दृश्य देखकर ख़्याल आया कि मौत जवानी और बुढ़ापे में कोई फ़र्क नहीं देखती। थोड़ी दूर आगे एक स्मारक पर लिखा था– ″ओ जाने वाले, कभी हम भी तेरी तरह चलते फिरते थे, लेकिन आज मिट्टी का ढ़ेर होके पाँव तले पड़े हैं।″ एक के बाद एक, यह तीन दृश्य देखकर दिल को चोट लगी। इसके बाद रातों की नींद उड़ गई। प्रभु प्रियतम के वियोग में यह अवस्था बनी कि रात को आँसुओं

से सारा तकिया भीग जाता। इस तलाश ने कई रंग दिखाये। किताबें पढ़ी, हरेक समाज के धर्मग्रंथ पढ़े। साधु महात्माओं से मिले– क्या–क्या नहीं किया? यह सवाल आख़िर हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाकर हल हुआ।

जीवन की पवित्रता, आत्म–निरीक्षण और निरन्तर अभ्यास से आपको त्रिकालदर्शिता प्राप्त हो गई– पीछे क्या हुआ, आगे क्या होने वाला है, सभी बातें साफ़ दिखाई देने लगीं। आपने प्रार्थना की, "हे प्रभु! मैं तो तुझे पाना चाहता हूँ। ये दैवी शक्तियाँ, जो तूने दया करके मुझे प्रदान की हैं, इनका शुक्रिया! इन्हें अपने पास रख। तुझसे यही माँगता हूँ कि मेरा जीवन एक साधारण व्यक्ति की तरह गुज़रे। दूसरे, यह कि यदि मेरे हाथों किसी का भला हो, तो मुझे उसका कोई अहसास न हो।" ये दो प्रार्थनायें 'कृपाल' के विशाल, प्रभु–प्रेम और विश्व–प्रेम से ओत–प्रोत हृदय की अनुपम झाँकी प्रस्तुत करती हैं।

सत्गुरु दयाल से भेंट

धर्मग्रंथों के अध्ययन से आप इस निष्कर्ष पर तो पहुँच चुके थे कि परमार्थ में सफलता के लिए गुरु का मिलना ज़रूरी है, पर हर वक़्त मन में यह धड़का लगा रहता था कि किसी अधूरे से वास्ता न पड़ जाए, सारा जीवन बर्बाद न चला जाए। इनके हृदय की सच्ची पुकार प्रभु ने सुनी और वक़्त के संत–सत्गुरु, श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का दिव्य स्वरूप इन्हें अन्तर में आने लगा। यह 1917 ई॰ की बात है, हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज जी के चरणों में जाने से सात साल पहले की। बाबा सावन सिंह जी महाराज से मुलाक़ात भी एक विचित्र संयोग था। 1924 ई॰ की बात है, जब आप लाहौर में मिलिट्री अकाउन्ट्स के दफ़्तर में काम करते थे। नदी का तट देखने का शौक़ आपको ब्यास ले गया। हुज़ूर बाबा सावन सिंह महाराज के चरणों में पहुँचे, तो देखा कि ये तो वही महापुरुष हैं जिनका दिव्य स्वरूप साल साल से अन्तर में पथ–प्रदर्शन करता रहा था। पूछा, "हुज़ूर, श्री चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" हुज़ूर महाराज मुस्करा दिये। कहने लगे, "यही वक़्त मुनासिब था।"

आदर्श शिष्य

गुरु की तलाश में कड़ी से कड़ी कसौटी आपने अपने सामने रखी। जब वह मिल गया, तो तन, मन, धन सब कुछ गुरु को अर्पण कर दिया। गुरु भक्ति की और ऐसी की कि गुरु में अभेद हो गये। इनके महान कल्याणकारी जीवन की मोटी–मोटी बातों को भी बयान करने की यहाँ गुंजाइश नहीं है। वह करन–कारण प्रभु–सत्ता, उसे 'नाम' कहो, 'शब्द' कहो, जो मानव तन में प्रकट होकर जीवों का कल्याण करती चली आई है, इनके अन्तर में प्रकट होकर पूर्व से पश्चिम तक जीवों का प्रभु से जोड़ती रही। यह उसका प्रताप था कि भारत के सभी वर्गों जातियों व समाजों के अतिरिक्त यूरोप और अमरीका में सभी मतों के इसाइयों, इसराइल के यहूदियों, भारत, पाकिस्तान और अरब देशों के मुसलमानों, अफ़्रीका और अमरीका के हबशियों, तिब्बत, मलाया व अन्य पूर्वी देशों के बौद्धों का प्रेम प्यार व सम्मान उनको प्राप्त था। इनके दीक्षितों में विश्व के लगभग सभी देशों, जातियों, विचारधाराओं तथा समाजों के लोग शामिल हैं।

महाराज कृपाल सिंह जी को पुरबले संस्कारों तथा गुरु कृपा के प्रताप से देह स्वरूप में गुरु (परम संत श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज) से मिलाप होने से सात साल पहले ही गुरुमुख की अवस्था प्राप्त हो चुकी थी। लम्बी खोज के बाद जब देह स्वरूप में सत्गुरु दयाल के दर्शन हुए, तो बरबस इनके मुख से निकला, "हुज़ूर! अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" कोई पूछ—ताछ नहीं, कोई सवाल–जवाब नहीं, सात साल से अन्तर दिव्य मंडलों में जो महापुरुष मार्गदर्शन करते रहे, उनसे सवाल–जवाब की गुंजाइश ही कहाँ रह गयी थी? शिष्य के सवाल के पीछे लंबी खोज की, विरह वेदना की, लंबी कहानी थी। गुरु के उत्तर में उसकी (गुरु के मानव तन में काम करने वाली प्रभु–सत्ता की) मौज या इच्छा का इशारा था, स्पष्ट संकेत था इस बात का कि इस सारी क्रिया में इन्सानी कोशिशों का दख़ल नहीं, यह उस परम सत्ता का काम है जो गुरु के चोले में प्रकट होकर जीवों का उद्धार अर्थात् उन्हें तन–मन से ऊपर लाकर प्रभु से जोड़ने और मिलाने का काम करती है। गुरु शिष्य की कहानी उस पहली मुलाक़ात ही में अपनी चरम सीमा में पहुँच गयी, किन्तु प्रभु रूप महापुरुषों का जीवन अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए हुआ करता है। वे ज़िंदगी की क़लम से लिखी

एक खुली किताब होते है, जीवन–पथ के यात्रियों के मार्गदर्शन के लिए। अपनी जीवन यात्रा में वे जिज्ञासुओं के लिए पद चिन्ह छोड़ जाते हैं, इस लिए उनकी कहानी चरम पर पहुँच कर भी एक शुरूआत बन जाती है। जैसे अध्यापक प्राइमरी में प्राइमरी की, मिडिल में मिडिल की और एम.ए. में एम.ए. की योग्यता दर्शाता है, इसी तरह महापुरुष पूर्ण होते हुए भी गृहस्थी, जिज्ञासु, सेवक और शिष्य– सारे आदर्शों को अपने जीवन में प्रस्तुत करते हैं।

गुरु और गुरुमुख की कहानी

ग्रहणशीलता से पिता–पूत की, गुरु और गुरुमुख की कहानी शुरू होती है, जो विकास की विभिन्न स्थितियों से गुज़र कर उस मंज़िल पर पहुँचती है, जहाँ पिता–पूत में, गुरु और शिष्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता और वह (शिष्य) सेंट पॉल के शब्दों में पुकार उठता है :

"It is I, not now I, it is Christ but lives in me."

अर्थात् "यद्यपि मैं वही हूँ, परन्तु अब 'मै' नहीं रहा, क्योंकि अब मेरे अन्तर में निवास करने वाला मसीह है।" यह प्रेम की पुरातन परम्परा है।

प्रेम गली अति सांकरी जा में दो न समांहि।

यहाँ दो से एक होकर चलना पड़ता है। शिष्य अपना अस्तित्व गुरु में लीन कर देता है। सूफ़ियों की परिभाषा में वह 'फ़ना–फ़िलशेख़' हो जाता है, गुरु में समा जाता है। जो प्रभु में समा गया वो (सूफ़ियों की इस्तेलाह या परिभाषा में) 'फ़ना–फ़िल्लाह' हो जाता है, प्रभु में समा जाता है। महाराज कृपाल सिंह जी के शब्दों में "गुरु God-man (प्रभु में अभेद) है, अर्थात् God (परमात्मा) जमा इन्सान। जो Guru-man अर्थात् गुरुमुख बन गया, प्रभु उस में आ गया कि नहीं?"

Receptivity या (गुरु से) ग्रहणशीलता जो संत कृपाल सिंह जी महाराज को पुरबले संस्कारों और गुरु कृपा की देन थी, उसे कैसे पैदा किया जाए? एक ऐसा शिष्य, जिसकी पिछली background या पृष्ठभूमि नहीं, उसे कैसे प्राप्त कर सकता है? इस संदर्भ में महाराज कृपाल सिंह जी का मशहूर कथन सामने आता है, "एक इन्सान ने जो किया है, वही

काम अन्य दूसरा इन्सान भी कर सकता है, यदि उसे सही मार्गदर्शन और मदद मिले।" उन के गुरुपद काल ही में नहीं शिष्यत्व काल में भी इस बारे में (गुरु से दिल से दिल को राह बनाने के बारे में) बहुत लोगों ने उनके मार्गदर्शन और सहायता से लाभ उठाया। अपने प्रवचनों और लिखतों में गुरु से यक़दिली बनाने का मज़मून का (जिसे वो परमार्थ का मूल और आधार मानते थे) ऐसा सुविस्तार और बोधगम्य स्पष्टीकरण उन्होंने किया है, और ऐसी पते की बातें बताई हैं कि अध्यात्म के पूरे साहित्य में कोई मिसाल नहीं मिलती। इस सिलसिले में गुरु–दर्शन पर वे बड़ा ज़ोर देते थे। गुरु दर्शन के बारे में बड़ी गूढ़ बातें आप बताया करते थे। दर्शन के प्रसंग में अपने सत्संग प्रवचनों में हुज़ूरे–पुरनूर उपासना का आदर्श प्रस्तुत करते थे (उप–आसन) अर्थात् पास बैठना। पास बैठना ये नहीं हैं कि,

दिल दिया कहीं और ही, तन साधु के संग।

साधु संग अर्थात् साधु के पास बैठना यह है कि दर्शन में इतना लीन हो जाए कि तन–मन की सुधि भूल जाए। अपने जीवन का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए फ़र्माया करते थे :

"हुज़ूर अपने काम में लीन होते, मैं चुप–चाप बैठा देखता रहता। अभिनेता होता है ना, उसकी हर बात में अभिनय होता है, खाने–पीने में, उठने–बैठने में, बोलने–चालने में। एक तो उसका वास्तविक स्वरूप, जो वह स्वयं आप है (अर्थात् परमात्मा); एक जो वो बन के आया है, जो पार्ट वह करता है (अर्थात् इन्सान)। हमारी तरह ही मानव देह वह रखता है, लेकिन वह कुछ और भी है। वह सदेह–परमात्मा है। चित्तवृत्ति एकाग्र कर के चुप–चाप बैठे देखते रहो, तो God-in-man की, प्रभु–सत्ता जो गुरु के मानव तन में काम करती है, उसकी झलक मिलती है।"

जब आप श्री हुज़ूर महाराज जी के चरणों में जाते, तो 'दीदा शौ यक़सर' अर्थात् सर्वथा आँख बन जाते, अपलक नेत्रों से चुप–चाप देखते रहते। दर्शन में ऐसे लीन हो जाते कि तन–बदन की सुधि न रहती। पास बैठे लोगों को एक आनन्द की अनुभूति होती, मुफ़्त नशा मिल जाता। एक दिन आप सत्गुरु दयाल के दर्शनों में लीन थे, कोई और वहाँ मौजूद न था। एक भक्त महिला ने देखा, तो शोर मचा दिया, "मैंने आप दोनों की

चोरी पकड़ ली है।" सत्गुरु दयाल हंसकर कहने लगे, "क्या चोरी पकड़ ली है?" "आप दोनों देह में नहीं हो, उठकर आँखों में आ गए हो।"

ऐसे कई दृष्टान्त उनकी जीवन गाथा में मिलते हैं, जिन पर अमर जीवन की मुहर लगी हुई है, जो उन्होंने ख़ुद पाया और जिस का अंश दुनिया भर के परमार्थभिलाषियों को देते रहे। उनकी हर लिखत, हर कथन उनका, उस जीवन का, abundance of heart का, उनके करुणामय हृदय के अनन्त स्रोत का, रंग और असर लिए हुए है। उदाहरणार्थ उपरोक्त विषय (अर्थात् परमार्थ में रसाई, जो गुरु से एकात्मता की देन है), पर उनका ये सारगर्भित कथन, "मैंने सत्गुरु दयाल से कभी कोई सवाल नहीं किया। बस चुप–चाप बैठे दर्शन करता रहता। देखने–देखने में मुझे सब कुछ मिल गया, बिन मांगे मिल गया।"

जीवन की पड़ताल

जीवन की पड़ताल की डायरी परमार्थाभिलाषियों तथा सतपथ के यात्रियों को संत कृपाल सिंह जी महाराज की ख़ास देन है तथा यह उनके अपने जीवन, अनुभव और विश्व के सारे धर्मों–मज़हबों–मतों की शिक्षाओं के तुलनात्मक अध्ययन का निचोड़ है। उन्होने स्वयं सात साल की उम्र में डायरी रखना शुरू कर दिया था, जिसमें दिन भर की ग़लतियों की कड़ाई और बेलिहाज़ी से लिखते, और आगे के लिए उन ग़लतियों से बचने का यत्न करते। आगे चल कर जब उन्होंने गुरु पद पर कार्य शुरू किया, तो आत्म–निरीक्षण की डायरी को एक ऐसा वैज्ञानिक रूप दिया, जिसमें दुनिया के सारे धर्मग्रंथों और आज तक आए सारे महापुरुषों की शिक्षाओं का निचोड़ डायरी में प्रस्तुत कर दिया और अपने शिष्यों और सत्संगीजनों को डायरी के द्वारा अपनी त्रुटियों को चुन–चुन कर बाहर निकालने पर ज़ोर देते रहे। डायरी के विषय में आप फ़रमाते थे कि इन्सान कुछ भी न करे, सच्चाई के साथ केवल डायरी भरना शुरू कर दे, तो उसका जीवन पलटा खा जाएगा और दिल का दर्पण साफ़ हो कर सत्य की झलक उसमें पड़ने लगेगी। डायरी के बारे में हुज़ूर महाराज जी ने विस्तार के साथ कहा और लिखा है। यहाँ उनका एक ही कथन दोहराना काफ़ी है कि "हमें पता ही नहीं हम कहाँ खड़े हैं। यह पता हो कि हम गंदगी में बैठे हैं, तो उससे निकलने

की कोशिश भी करेंगे। हमें पता ही नहीं हममें क्या त्रुटियाँ है। अपनी त्रुटियों को देखें, तभी पता चले। अपनी तरफ़ नज़र मार कर देखें, तो दूसरों के दोष निकालने की फ़ुर्सत ही न मिले।"

अपने व्यस्त–अति–व्यस्त जीवन में उन्होंने कई किताबें लिखीं, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण किताब, वर्तमान युग का महान धर्मग्रंथ, 'गुरुमत सिद्धात' है। यह अमर रचना, जो गुरुमुखी भाषा में है, दो भागों में, दो हज़ार पृष्ठों में फैली हुई है। इसमें गुरुग्रंथ साहिब और दुनिया के सभी समाजों के धर्मग्रंथों के प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि धर्मग्रंथ, जो आज तक लिखे गये और महापुरुष, जो आज दिन तक आए, सबकी मूलभूत तालीम एक ही है। इस महान ग्रंथ में दुनिया के सारे धर्मग्रंथों का सार प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम के परमार्थाभिलाषियों के लिए आपने अंग्रेज़ी भाषा में कई ग्रंथ रचे। आपकी पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, इंडोनेशियन, रूसी और ग्रीक (भारत के अतिरिक्त विश्व की कुल 14 भाषाओं में) हो चुका है।

अध्यात्म का सार्वभौम प्रसार

36 वर्ष की सरकारी नौकरी के बाद, मार्च 1947 ई० में, आप डिप्टी असिस्टेन्ट कन्ट्रोलर ऑफ़ मिलिट्री एकाउन्ट्स के पद पर रिटायर हुए और उसके बाद, सत्गुरु दयाल हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज के मिशन को पूरा करने में लगे रहे, जब वे 2 अप्रैल, 1948 ई० को अपना रूहानियत का, अर्थात् जीवों के कल्याण का काम, आपको सौंप कर परमधाम सिधार गये। गुरु के आदेशानुसार आपने 1948 ई० में रूहानी सत्संग और 1951 में दिल्ली में 'सावन–आश्रम' की स्थापना की, जहाँ जात–पात, रंग–वर्ण, देश व समाज के भेद–भाव के बग़ैर हरेक परमार्थाभिलाषी को, आत्मतत्व का व्यक्तिगत अनुभव उन्होंने प्रदान किया। धर्म को और प्रभु को मानने वाले लोगों को– वो किसी भी धर्म, देश, जाति, नस्ल के हों– आपस में जोड़ने और मिलाने की साँझी धरती, Common Ground, जो हुज़ूर बाबा सावनसिंह जी महाराज के ज़माने में क़ायम हो चुकी थी और जिसके रूहानी फैज़ (पारमार्थिक लाभ) का सिलसिला (अर्थात् परमार्थाभिलाषियों को मन–इन्द्रियों से ऊपर लाकर आत्मानुभव प्रदान करने

के कार्य का सिलसिला), जो भारत के कोने–कोने में और भारत से बाहर यूरोप, इंग्लैंड और अमरीका तक फैल चुका था, उस काम को उन्होंने अपने 26 वर्ष की पल–पल कार्यरत, व्यस्त–अति–व्यस्त रूहानी पादशाही में और आगे बढ़ाया और इतना आगे फैलाया कि यूरोप के लगभग सभी मुल्कों, अफ़्रीका के विभिन्न देशों, इंग्लैंड, (उत्तरी तथा दक्षिणी) अमरीका, कॅनेडा, पूर्व में मलाया, कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया आदि देशों में रूहानी सत्संग की 250 से ऊपर शाखायें उनके जीवन काल में स्थापित हो चुकी थीं।

विश्व यात्राएँ

1955 में उन्होंने पश्चिम–यूरोप, इंग्लैंड, अमरीका आदि की यात्रा की और लोगों को आत्मानुभव की दात दी। उस ऐतिहासिक विदेश यात्रा में उन्होंने, जो महान कार्य सार्वभौमिक स्तर पर उन्हें करना था, उसकी पक्की नींव रखी और अपने महान सत्गुरु की रूहानी दात के डंके सारी दुनिया में बजा दिये। पश्चिमी देशों में भाषण पर टिकट लगता है, जिसका एक हिस्सा वक्ता को मिलता है। महाराज जी ने हर जगह free talks (मुफ़्त व्याख्यान) दीं। लोगों ने उन्हें धन देना चाहा तो उन्होंने कहा, "कुदरत की सारी दातें– रोशनी, पानी, हवा– मुफ़्त हैं और सबके लिए हैं। रूहानियत (आत्मज्ञान) भी कुदरत की देन है; वह सब के लिए है और सबको मुफ़्त मिलेगी।" दो वर्ष पश्चात, 1957 में दिल्ली में वे सर्व–सम्मति से 'World Fellowship of Religions' ('विश्व सर्वधर्म संघ') के प्रधान चुने गये, जिसे उसके संयोजक, मुनि सुशील कुमार जी महाराज एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का रूप देना चाहते थे। महाराज जी ने उसका संविधान बनाया और उस संस्था के अन्तर्गत जो चार विश्व सम्मेलन, 1957 में दिल्ली में, 1960 में कलकत्ता में और 1963 और 1970 में फिर दिल्ली में हुए, वे सब उनकी अध्यक्षता में हुए। इन सम्मेलनों के फलस्वरूप धर्मों का एक शक्तिशाली common platform या सयुंक्त मंच बना, विभिन्न धर्मों के लोगों के एक जगह मिल बैठने और विचार–विमर्श करने की प्रथा चली, जिससे आपस की ग़लतफ़हमियाँ दूर हुईं और लोग एक–दूसरे के क़रीब आने लगे, भेद–भाव दूर हुए, धर्मांधता, ता'स्सुब, तंगदिली कम हुई और समन्वय और सहिष्णुता की भावना को बढ़ावा मिला। मगर उसके साथ ही लोगों में अपने–अपने

समाज को आगे बढ़ाने की भावना बनी रही, बल्कि और मज़बूत हुई और ऐसी आवाज़ें सुनाई देने लगीं, "दुनिया भर के हिन्दुओं, एक हो जाओ; मुसलमानों, एक हो जाओ।" इस चीज़ को देखकर महाराज जी इस नतीजे पर पहुँचे कि अब इसके बाद एक और क़दम आगे बढ़ाना होगा।

धर्मों और मज़हबों का, सभी समाजों का— उद्देश्य तो यही है न कि इन्सान नेक–पाक–सदाचारी बनें, सही मा'नों में इन्सान बनें। यह सोचकर उन्होंने एक महान क्रान्तिकारी क़दम उठाने का फ़ैसला किया, जो 'मानव–केन्द्र' की स्थापना और 'विश्व मानव एकता सम्मेलन' के रूप में दुनिया के सामने आया।

1962 में ईसाईयों की डेढ़ हज़ार वर्ष पुरानी धर्म संस्था, 'Sovereign Order of St. John of Jerusalem, Knights of Malta' ने, जो मुस्लिम—ईसाई धर्मग्रंथों में 'Knights Templar' कहलाते थे, उन्होंने महाराज जी को 'Grand Commander' की उपाधि से सम्मानित किया। इसके लिए उन्हें अपने डेढ़ हज़ार वर्ष पुराने संविधान में संशोधन करना पड़ा। सिक्ख समाज के एक महापुरुष को धर्मवीर मानकर उन्होंने स्वीकार किया कि धर्म और आस्तिकता ईसाईयों का एकाधिकार नहीं। कॅथोलिक ईसाईयों के धर्मगुरु पोप ने आपसे भेंट करने के बाद ग़ैर–ईसाइयों से मेल–जोल बढ़ाने की घोषणा की और इस हेतु जो सलाहकार समिति बनायी, उसमें महाराज कृपाल सिंह जी का नाम भी शामिल किया।

1963 में हुज़ूर दूसरी बार विश्व यात्रा पर गये। तब तक रूहानी सत्संग की दो सौ शाखायें सारी दुनिया में फैल चुकी थीं। इस यात्रा में उन्होंने रूहानी सत्संग की शाखाओं का गठन किया, नई शाखायें स्थापित कीं, नए परमार्थाभिलाषियों को नामदान दिया और साथ ही 'मानव एकता सम्मेलन' और 'विश्व सर्वधर्म सम्मेलन' के common platform का संदेश लोगों को दिया। दूसरी विश्व यात्रा में हुज़ूर महाराज जी ने विभिन्न स्तरों पर काम किया। वे हुक्मरानों (विभिन्न देशों के सत्ताधीशों) से मिले और उन्हें बताया कि प्रभु ने लाखों लोगों की सुरक्षा और कल्याण का जो काम उन्हें सौंपा है, उसे पूरी ईमानदारी के साथ पूरा करें। यदि पड़ोसी देश अव्यवस्थित या कमज़ोर पड़ जाए, तो वे उसकी मजबूरी का लाभ उठा कर उसका शोषण न करे, बल्कि उसकी सहायता करें। वे राजनीतिज्ञों,

जन–नायकों, धर्माचार्यों, सभी से मिले। ईसाई समाज की प्राचीनतम धर्म संस्था से सम्मान प्राप्त करने के कारण उनके लिए सारे गिरजों के दरवाज़े खोल दिए गए थे और इस यात्रा की अधिकतर talks (प्रवचन) उन्होंने गिरजों में दी, बल्कि नामदान तक गिरजों में दिया; ये बात आज तक नहीं हुई थी। अगस्त 1972 से जनवरी 1973 तक, पाँच महीने की अपनी तीसरी और आख़िरी विश्व यात्रा में, हुज़ूर महाराज ने सिर्फ़ एक काम किया– खुले आम लोगों को नामदान देने का। उपदेश–प्रवचन के बाद अगले दिन सबको भजन पर बिठा दिया जाता और नामदान अभिलाषियों को, हरेक को नामदान दिया जाता।

मानव-केन्द्र की स्थापना

1969 में हुज़ूर महाराज जी की हीरक जयन्ती सब समाजों ने मिल कर मनायी। विश्व एकता और राष्ट्र नवचेतना के अग्रदूत और मार्गदर्शक का इससे बढ़कर अभिनन्दन नहीं हो सकता था कि उनकी हीरक जयन्ती का वर्ष 'राष्ट्रीय एकता वर्ष' के रूप में मनाया गया। सभी समाजों ने उस वर्ष राष्ट्रीय एकता के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का प्रण किया। महाराज जी मंच पर भाषण करके संतुष्ट हो जाने वाले नहीं थे। उसी वर्ष उन्होंने 'मानव–केन्द्र' की योजना बनायी। उसमें श्री काका साहिब कालेलकर, प॰ दीनानाथ दिनेश और अन्य महापुरुषों को साथ लिया और 1970 में, देहरादून में 'मानव–केन्द्र' का भव्य स्वरूप, भारत का सबसे बड़ा पक्का अंडाकार सरोवर, बाग़, अस्पताल आदि बनकर तैयार हो गये। हीरक जयन्ती के अवसर पर अपनी जन्मतिथि, छः फ़रवरी के अनुरूप, छः शब्दों में उन्होंने अपनी तालीम का जो निचोड़ पेश किया था, 'भले बनो, भला करो, एक रहो'– 'मानव–केन्द्र' उसका साकार स्वरूप था।

विश्व मानव एकता सम्मेलन

'विश्व सर्वधर्म सम्मेलन' के महान कार्य और उसके व्यापक प्रभाव का उन्हें पूरा अहसास था। लेकिन उन्होंने देखा और अपने प्रवचनों और किताबों में कहा और लिखा कि समाजों के विवेकवान लोग (नेता–गण, धर्माचार्य) तो बहुत हद तक एक हो गए है और भेद–भाव से ऊपर उठ गए हैं, लेकिन उनके अनुयायियों में वो बात पैदा नहीं हुई। तभी उन्होंने

धर्म की बजाए मानव और मानवता के आधार पर एकता सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। विश्व के इतिहास में अपने ढंग का यह पहला प्रयास था। इससे पहले सम्राट अशोक और हर्ष के ज़माने में जो सम्मेलन हुए, वे धर्म के आधार पर हुए थे। दिल्ली और पूरे देश में इतना बड़ा विश्व स्तर का सम्मेलन इससे पहले कभी नहीं हुआ था। विभिन्न देशों के पाँच सौ से अधिक प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए। भारत के प्रतिनिधि उनके अतिरिक्त थे। इस सम्मेलन की एक बड़ी विशेषता यह थी कि यद्यपि इसके लिए धन और साधन 'रूहानी–सत्संग' ने जुटाये, लेकिन महाराज जी ने ये सम्मेलन रूहानी–सत्संग की तरफ़ से नहीं किया, बल्कि सब समाजों के सम्मिलित तत्वावधान में किया। उन्होंने सम्मेलन के आठ सचिव नियुक्त किए, जो विभिन्न समाजों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। महाराज जी के शब्दों में, "परमात्मा ने इन्सान बनाये। उसने मुहर (ठप्पा) लगा के नहीं भेजा कि यह हिन्दू है, यह मुसलमान। समाजें इन्सान ने बनाईं, इसलिए कि इन्सान सही मा'नों में इन्सान बने, नेक–पाक–सदाचारी बने, इन्सान इन्सान के काम आये, जिससे उसकी जीवन यात्रा सुख से व्यतीत हो और फिर सब मिलकर, जहाँ जिस समाज में जो कोई है, उसमें रहते हुए और अपनी–अपनी समाज मर्यादा का पालन करते हुए, उस लक्ष्य को पाये, जो मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य और सब समाजों का साँझा आदर्श है। समाजें इन्सान के लिए बनी, इन्सान समाजों के लिए नहीं बना था; मगर वह मक़सद किनारे रह गया। हम समाजों के उद्देश्य (मानव–निर्माण और प्रभु– प्राप्ति) को भूलकर अपने–अपने समाजों को ही बनाने–सँवारने में लग गए।" 'विश्व मानव एकता सम्मेलन' में हुज़ूर महाराज जी ने इन्सान और इंसानियत के आधार पर एकता का आदर्श पेश किया। उन्होंने कहा कि "इन्सान सब एक हैं। बाहर की और अन्दर की बनावट सबकी एक है। एक ही तरह से सब पैदा होते हैं और मरते हैं। वह हक़ीक़त सबमें हैं, सबकी पैदा करने वाली, प्रतिपालक और जीवनाधार है। एकता तो आगे ही मौजूद है, मगर हम भूल गए हैं।" उस व्यापक जन्मजात एकता के आधार पर उन्होंने इन्सान इन्सान को मिलाने का ये महान प्रयास किया।

पहली अगस्त 1974 में (महाप्रयाण से 20 दिन पहले) भारत के संसद भवन में उनके सम्मान में एक सभा आयोजित की गयी, जिसमें उनका

मानपत्र प्रस्तुत किया गया। इस सभा की अध्यक्षता संसद के स्पीकर श्री गुरदयालसिंह ढिल्लों ने की। संसद के इतिहास में ये पहला मौक़ा था, जब संसद सदस्यों की ओर से संसद भवन में एक आध्यात्मिक महापुरुष को सम्मानित किया गया।

संत कृपाल सिंह जी महाराज ने विभिन्न स्तरों पर और दिशाओं में विश्व में नव जाग्रति और नव चेतना के जो बीज बोए, वे एक दिन फल लायेंगे और वह वक़्त आ गया है। जैसा कि वे आख़िरी दिनों में कहा करते थे, "सतयुग कोई आसमानों से फट पड़ने वाला नहीं, कलयुग के घोर अंधकार ही से उसका अभ्युदय होगा, और वह दिन दूर नहीं। यह जो नयी चेतना, नयी जाग्रति सब समाजों में दिखाई दे रही है, वह प्रभु–प्रेरणा से है और सतयुग के अभ्युदय की निशानी है।"

सावन-कृपाल दयाधारा का नया दौर

हुज़ूर संत कृपाल सिंह जी महाराज अपने जीवन की संध्या–बेला अक़्सर कहा करते थे कि मेरा मिशन मेरे बाद भी जारी रहेगा और दिनों–दिन आगे बढ़ेगा और फैलेगा। आज, उनके अनामी पद लीन होने के दस साल बाद, "सावन–कृपाल रूहानी मिशन" के अंतर्गत हम इन दो महापुरुषों की विशाल दयाधारा को नयी–नयी दिशाओं में बढ़ते–फैलते देख रहे हैं। इतनी तेज़ी से काम आगे बढ़ा–फैला है कि देख कर अक़्ल चक्कर खाती है। आज वही कार्य संत दर्शनसिंह जी महाराज के उत्तराधिकारी, संत राजिन्दर सिंह जी महाराज की देखरेख में चल रहे हैं।